नवंबर, 2023

I.S.S.N. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. राजीव मणि,
सचिव, विधायी विभाग

श्री अश्वनी,
संयुक्त सचिव और विधायी परामर्शी,
विधायी विभाग, (विभागाध्यक्ष) वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप, एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. आर्येन्दु द्विवेदी,
प्राचार्य, मां वैष्णों देवी ला कालेज
फैजाबाद रोड, चिनहट, लखनऊ, उ.प्र.

श्री कुलदीप चौहान,
चेयरमैन, एस.आर.सी. ला कालेज
129, सेक्टर-1, मंगल पाण्डेय नगर,
मेरठ, उ.प्र.

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री दयाल चन्द ग्रोवर,
सेवानिवृत्त उप-संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री अविनाश शुक्ला,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा,
संपादक

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह, जसवन्त सिंह, जाह्नवी शेखर शर्मा और अमर्त्य हेम विप्र पाण्डेय

परामर्शदाता : सर्वश्री कमला कान्त और असलम खान

ISSN 2457-0494

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ` 195/-

वार्षिक : ` 2,100/-

© 2023 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

नवंबर, 2023 अंक - 11

संपादक

पुण्डरीक शर्मा

[2023] 4 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on Website https://bharatkosh.gov.in/product/product

---

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001. दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं, विधि छात्रों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते हैं और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

क्या कोई न्यायालय अभियुक्त को उसकी भाषा में पुलिस रिपोर्ट या अन्य दस्तावेजों की प्रतिलिपियां उपलब्ध कराने के लिए आबद्धकर हैं ? इसी प्रश्न पर विचार करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने **केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो** बनाम **नरोत्तम धाकड़** [2023] 4 उम. नि. प. 47 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि राज्य सरकार को दंड प्रक्रिया संहिता के प्रयोजनों के लिए राज्य के भीतर उच्च न्यायालय से भिन्न न्यायालयों की, धारा 272 के अधीन न्यायालय की भाषा का अवधारण करने की शक्ति है । किन्तु, उसे यह विनिश्चय करने की शक्ति नहीं है कि अन्वेषण अभिकरणों या पुलिस द्वारा अन्वेषण का अभिलेख बनाए रखने के लिए कौन सी भाषा प्रयुक्त की जाएगी और संहिता में धारा 173 के अधीन पुलिस रिपोर्ट/आरोप पत्र के संबंध में ऐसी कोई अपेक्षा अधिकथित नहीं की गई है तथा जब अभियुक्त को धारा 207 या धारा 208 के अधीन आरोप पत्र और दस्तावेजों की प्रतिलिपियों का प्रदाय किया जाता है तो उसे यह अभिवाक् करने का अवसर उपलब्ध होता है कि वह उस भाषा को नहीं समझता है जिस भाषा में अंतिम रिपोर्ट या कथन या दस्तावेज लिखे गए हैं किंतु उसे ऐसी अभ्यापति शीघ्रतम अवसर पर उठानी होगी और जहां अभिलेख से यह प्रतीत होता हो कि अभियुक्त शिक्षित व्यक्ति हैं और उस भाषा का अच्छा ज्ञान है जिस भाषा में उनके विरुद्ध अंतिम रिपोर्ट फाइल की गई है और उनका प्लीडर भी उस भाषा को अच्छी तरह समझता है, तो यह नहीं कहा जा

सकता है कि अभियुक्त को आरोप पत्र और अन्य दस्तावेजों की अनुदित प्रतिलिपियां प्रदाय न करने के कारण न्याय नहीं हो पाया है ।

क्या न्यायिक विवेक के अनुसार किसी न्यायालय के लिए यह करना उपयुक्त होगा कि ऐसे किसी मामले में जहां अभियुक्त पर दो अन्य सह-अभियुक्तों के साथ शिकायतकर्ता पर आयुधों से लैस होकर आक्रमण करने का आरोप लगाया गया है, न्यायालय सह-अभियुक्तों को दोषमुक्त करते हुए अभियुक्त को पांच वर्ष के कठोर कारावास से दंडादिष्ट करे । इसी प्रश्न पर विचार करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने **प्रमोद कुमार मिश्रा** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** [2023] 4 उम. नि. प. 69 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी-अभियुक्त और क्षतिग्रस्त शिकायतकर्ता के बीच भूमि के टुकड़े को लेकर पुरानी दुश्मनी थी और अभियुक्त-अपीलार्थी द्‌वारा शिकायतकर्ता को क्षतियां किसी पूर्व-चिंतन के बिना कारित की गई थीं और उसका कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं था, इसलिए ऐसी परिस्थितियों में उस पर अधिरोपित पांच वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को कम करके तीन वर्ष का कठोर करावास करना न्यायोचित होगा ।

इस अंक में बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्यक प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं।

पुंडरीक शर्मा
संपादक

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

नवंबर, 2023

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो **बनाम** नरोत्तम धाकड़	47
केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो **बनाम** सुनील सिंह और एक अन्य (देखिए - पृष्ठ संख्या 47)	
प्रमोद कुमार मिश्रा **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	69
मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि **बनाम** महंत सुरेश दास और अन्य	477

संसद् के अधिनियम

बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 19

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 207, 208, 272 और 465 – अभियुक्त को राज्य सरकार द्वारा अवधारित न्यायालय की भाषा में पुलिस रिपोर्ट या अन्य दस्तावेजों की प्रतिलिपियां दिया जाना – मध्य प्रदेश राज्य में हिंदी को उच्च न्यायालय से भिन्न अन्य न्यायालयों की भाषा घोषित किया जाना – व्यापम घोटाले में अन्वेषण अभिकरण द्वारा अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया जाना – प्रत्यर्थी-अभियुक्तों द्वारा अंग्रेजी भाषा में फाइल आरोप पत्र की हिंदी भाषा में प्रतिलिपियां उपलब्ध कराए जाने का निवेदन किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा उक्त निवेदन को नामंजूर किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्तों की अपील मंजूर किया जाना और हिंदी भाषा में प्रतिलिपियां प्रदाय करने का निदेश दिया जाना – संधार्यता – राज्य सरकार को राज्य के भीतर उच्च न्यायालय से भिन्न न्यायालयों की दंड प्रक्रिया संहिता के प्रयोजनों के लिए धारा 272 के अधीन न्यायालय की भाषा का अवधारण करने की शक्ति यह विनिश्चय करने की नहीं है कि अन्वेषण अभिकरणों या पुलिस द्वारा अन्वेषण का अभिलेख बनाए रखने के लिए कौन सी भाषा प्रयुक्त की जाएगी और संहिता में धारा 173 के अधीन पुलिस रिपोर्ट/आरोप पत्र के संबंध में ऐसी कोई अपेक्षा अधिकथित नहीं की गई है तथा जब अभियुक्त को धारा 207 या धारा 208 के अधीन आरोप पत्र और दस्तावेजों की प्रतिलिपियों का प्रदाय किया जाता है तो उसे यह अभिवाक् करने का अवसर

पृष्ठ संख्या

उपलब्ध होता है कि वह उस भाषा को नहीं समझता है जिस भाषा में अंतिम रिपोर्ट या कथन या दस्तावेज लिखे गए हैं किंतु उसे ऐसी अभ्यापति शीघ्रतम अवसर पर उठानी होगी और जहां अभिलेख से यह प्रतीत होता हो कि अभियुक्त शिक्षित व्यक्ति हैं और उस भाषा का अच्छा ज्ञान है जिस भाषा में उनके विरुद्ध अंतिम रिपोर्ट फाइल की गई है और उनका प्लीडर भी उस भाषा को अच्छी तरह समझता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त को आरोप पत्र और अन्य दस्तावेजों की अनूदित प्रतिलिपियां प्रदाय न करने के कारण न्याय नहीं हो पाया है तथा अभियुक्त इस आधार पर जमानत का दावा नहीं कर सकते, इसलिए उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करना उचित होगा ।

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो बनाम **नरोत्तम धाकड़** 47

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 307 – हत्या का प्रयत्न – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा दो अन्य सह-अभियुक्तों के साथ शिकायतकर्ता पर आयुधों से लैस होकर आक्रमण किया जाना और उसे क्षतियां कारित किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा सह-अभियुक्तों को दोषमुक्त किया जाना और अभियुक्त-अपीलार्थी को पांच वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश दिया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किया जाना – उच्चतम न्यायालय में अपील – यह एक भली-भांति स्थिर सिद्धांत है कि दंडादेश अधिरोपित करते समय मामले की गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार

पृष्ठ संख्या

किया जाना चाहिए और अभिलेख से यह दर्शित होने पर कि अपीलार्थी-अभियुक्त और क्षतिग्रस्त शिकायतकर्ता के बीच भूमि के टुकड़े को लेकर पुरानी दुश्मनी थी और अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता को क्षतियां किसी पूर्व-चिंतन के बिना कारित की गई थीं और उसका कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं था, इसलिए ऐसी परिस्थितियों में उस पर अधिरोपित पांच वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को कम करके तीन वर्ष का कठोर करावास करना न्यायोचित होगा ।

प्रमोद कुमार मिश्रा बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 69

[2023] 4 उम. नि. प. 47

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो

बनाम

नरोत्तम धाकड़

[2023 की दांडिक अपील सं. 2592]

तथा

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो

बनाम

सुनील सिंह और एक अन्य

[2023 की दांडिक अपील सं. 2593]

25 अगस्त, 2023

न्यायमूर्ति अभय एस. ओका और न्यायमूर्ति राजेश बिंदल

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 207, 208, 272 और 465 – अभियुक्त को राज्य सरकार द्वारा अवधारित न्यायालय की भाषा में पुलिस रिपोर्ट या अन्य दस्तावेजों की प्रतिलिपियां दिया जाना – मध्य प्रदेश राज्य में हिंदी को उच्च न्यायालय से भिन्न अन्य न्यायालयों की भाषा घोषित किया जाना – व्यापम घोटाले में अन्वेषण अभिकरण द्वारा अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया जाना – प्रत्यर्थी-अभियुक्तों द्वारा अंग्रेजी भाषा में फाइल आरोप पत्र की हिंदी भाषा में प्रतिलिपियां उपलब्ध कराए जाने का निवेदन किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा उक्त निवेदन को नामंजूर किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्तों की अपील मंजूर किया जाना और हिंदी भाषा में प्रतिलिपियां प्रदाय करने का निदेश दिया जाना – संधार्यता – राज्य सरकार को राज्य के भीतर उच्च न्यायालय से भिन्न न्यायालयों की दंड प्रक्रिया संहिता के प्रयोजनों के लिए धारा 272 के अधीन

न्यायालय की भाषा का अवधारण करने की शक्ति यह विनिश्चय करने की नहीं है कि अन्वेषण अभिकरणों या पुलिस द्वारा अन्वेषण का अभिलेख बनाए रखने के लिए कौन सी भाषा प्रयुक्त की जाएगी और संहिता में धारा 173 के अधीन पुलिस रिपोर्ट/आरोप पत्र के संबंध में ऐसी कोई अपेक्षा अधिकथित नहीं की गई है तथा जब अभियुक्त को धारा 207 या धारा 208 के अधीन आरोप पत्र और दस्तावेजों की प्रतिलिपियों का प्रदाय किया जाता है तो उसे यह अभिवाक् करने का अवसर उपलब्ध होता है कि वह उस भाषा को नहीं समझता है जिस भाषा में अंतिम रिपोर्ट या कथन या दस्तावेज लिखे गए हैं किंतु उसे ऐसी अभ्यापति शीघ्रतम अवसर पर उठानी होगी और जहां अभिलेख से यह प्रतीत होता हो कि अभियुक्त शिक्षित व्यक्ति हैं और उस भाषा का अच्छा ज्ञान है जिस भाषा में उनके विरुद्ध अंतिम रिपोर्ट फाइल की गई है और उनका प्लीडर भी उस भाषा को अच्छी तरह समझता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त को आरोप पत्र और अन्य दस्तावेजों की अनूदित प्रतिलिपियां प्रदाय न करने के कारण न्याय नहीं हो पाया है तथा अभियुक्त इस आधार पर जमानत का दावा नहीं कर सकते, इसलिए उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करना उचित होगा ।

इन अपीलों के तथ्य इस प्रकार हैं कि मध्य प्रदेश राज्य में व्यापम घोटाले से उद्भूत अपराधों के संबंध में केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो-अपीलार्थी द्वारा अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 419, 420, 468, 467 और 471 के अधीन विभिन्न अपराधों और मध्य प्रदेश परीक्षा अधिनियम, 1937 की धारा 3 और 4 के अधीन अपराधों के लिए आरोप पत्र फाइल किए गए थे । एक अभियुक्त-इस अपील में प्रथम प्रत्यर्थी ने विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष एक आवेदन यह निदेश देने की ईप्सा करते हुए फाइल किया कि उसे अपीलार्थी द्वारा अंग्रेजी भाषा में फाइल किए गए आरोप पत्र का हिंदी अनुवाद दिया जाए । प्रथम प्रत्यर्थी-अभियुक्त की दलील यह थी कि वह अंग्रेजी भाषा में फाइल किए गए आरोप पत्र को समझने में असमर्थ है । विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अभिनिर्धारित किया कि प्रथम प्रत्यर्थी एक शिक्षित व्यक्ति है और उसे अंग्रेजी का ज्ञान है । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने मत व्यक्त किया कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया वकालतनामा

अंग्रेजी में था और प्रथम प्रत्यर्थी ने हस्ताक्षर भी अंग्रेजी में किए हैं । प्रथम प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व कर रहे अधिवक्ता को अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान है और इसलिए: विद्वान् मजिस्ट्रेट ने प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा किए गए निवेदन को नामंजूर कर दिया । पुनरीक्षण में विद्वान् मजिस्ट्रेट के आदेश की सेशन न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए इसमें हस्तक्षेप किया कि राज्य में दंड न्यायालयों की एकमात्र भाषा हिंदी है और इसलिए प्रथम प्रत्यर्थी न्यायालय की भाषा में आरोप पत्र के अनुवाद की ईप्सा करने का हकदार था । एक अन्य अभियुक्त-प्रत्यर्थी सं 2 ने भी विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष एक इसी प्रकार का आवेदन किया था जिसे नामंजूर कर दिया गया । प्रथम प्रत्यर्थी ने उक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी । उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि जब आरोप पत्र अभियुक्त की अज्ञात भाषा में फाइल किया गया था, तो वह उस भाषा में आरोप पत्र के अनुवाद का हकदार था जो वह समझता है । केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा उच्च न्यायालय के दोनों आदेशों को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – राज्य सरकार को यह शक्ति है कि वह अवधारण करे कि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रयोजनों के लिए राज्य के अंदर उच्च न्यायालय से भिन्न न्यायालयों की भाषा कौन-सी होगी । धारा 272 के अधीन शक्ति यह विनिश्चय करने की नहीं है कि अन्वेषण अभिकरणों या पुलिस द्वारा अन्वेषण के अभिलेख को बनाए रखने के प्रयोजनों के लिए कौन-सी भाषा प्रयोग की जाएगी । अधिक से अधिक, इस प्रयोजन के लिए राज्य की राजभाषा को शासित करने वाली विधि से संबंधित उपबंध, ऐसी अधिनियमिति में अंतर्विष्ट उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, लागू हो सकते हैं । किसी मामले में, राज्य सरकार धारा 173 की उपधारा (2) द्वारा अपेक्षित अनुसार प्ररूप विहित करते हुए यह उपबंध कर सकती है कि आरोप पत्र अवश्य राज्य की राजभाषा में फाइल किया जाना चाहिए । इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन धारा 272 केवल न्यायालयों की भाषा के संबंध में है । यह उल्लेख करना रोचक है कि जहां कहीं विधान-मंडल का आशय रहा है, वहां न्यायालय की भाषा का

प्रयोग करने की अपेक्षा को सम्मिलित करते हुए विनिर्दिष्ट उपबंध किए गए हैं । इनमें से कुछ उपबंध उन स्थितियों के संबंध में भी हैं जब अभियुक्त न्यायालय की भाषा को समझने में असमर्थ हो । यह न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता के उन सुसंगत उपबंधों का सारांश दे रहा है जिनका न्यायालय की भाषा के प्रश्न से कुछ सरोकार है – क. धारा 211 की उपधारा (6) में उपबंधित है कि आरोप न्यायालय की भाषा में लिखा जाएगा । तथापि, धारा 215 में उपबंधित है कि आरोप में किसी गलती को मामले के किसी प्रक्रम पर तब तक तात्विक नहीं समझा जाएगा जब तक कि अभियुक्त वास्तव में गलती या लोप के कारण भ्रमित न हुआ हो और उसके कारण न्याय नहीं हो पाया हो । अतः किसी प्रस्तुत मामले में, यदि आरोप न्यायालय की भाषा में विरचित नहीं किया जाता है, तो आरोप न्यायालय की भाषा में विरचित करने में हुए लोप को तब तक तात्विक नहीं समझा जाएगा जब तक कि यह दर्शित नहीं किया जाता है कि अभियुक्त भ्रमित हुआ था और इसके परिणामस्वरूप न्याय नहीं हो पाया था । ख. धारा 228 अध्याय 18 का भाग है, जो सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण के संबंध में है । धारा 228 की उपधारा (2) में आदिष्ट है कि न्यायालय को अवश्य अभियुक्त को आरोप पढ़कर सुनाया और समझाया जाना चाहिए । इसका यह अर्थ है कि यदि अभियुक्त उस भाषा को नहीं समझता है जिसमें आरोप विरचित किया जाता है, तो न्यायालय को उसे उस भाषा में आरोप को समझाना होगा जिस भाषा को वह समझता है । ग. धारा 240, जो मजिस्ट्रेटों द्वारा वारंट-मामलों का विचारण करने के संबंध में अध्याय 18 का भाग है, में यह उपबंधित है कि आरोप लिखित रूप में विरचित किया जाएगा और विद्वान् मजिस्ट्रेट अभियुक्त को आरोप पढ़कर सुनाएगा और समझाएगा । यद्यपि यह धारा इसे आज्ञापक नहीं करती है किंतु प्रसामान्यतः, आरोप दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 272 के अनुसार अवधारित न्यायालय की भाषा में विरचित किया जाएगा । अतः यदि अभियुक्त उस भाषा से परिचित नहीं है जिस भाषा में आरोप विरचित किया जाता है, तो मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य है कि वह अभियुक्त को आरोप उस भाषा में समझाए जो भाषा वह समझता है । घ. यदि अध्याय 18, 19, 20 और 21, जो सेशन न्यायालयों द्वारा विचारणीय मामलों, वारंट संबंधी विचारणीय मामलों, समन संबंधी विचारणीय

मामलों और संक्षिप्त विचारणों के संबंध में हैं, के उपबंधों की तुलना करें तो इनमें या तो अभियुक्त को आरोप को समझाने की अपेक्षा की गई है या अभियुक्त को अपराध की विशिष्टियां बताने की अपेक्षा की गई है । इन अपेक्षाओं को अभियुक्त को केवल उस भाषा में समझा कर पूरा किया जा सकता है, जो भाषा वह समझता है । ङ. केवल अध्याय 21 के अधीन संक्षिप्त विचारणों के मामले में, धारा 265 के अधीन यह एक विनिर्दिष्ट उपबंध है कि मामले का अभिलेख न्यायालय की भाषा में होगा । च. धारा 277(ख) साक्षी को उस किसी अन्य भाषा में साक्ष्य देने के लिए अनुज्ञात करती है जो न्यायालय की भाषा नहीं है । इसमें ऐसे साक्ष्य को अभिलिखित करने की प्रक्रिया अधिकथित की गई है । छ. जांचों और विचारणों में साक्ष्य के संबंध में अध्याय 23 के अधीन धारा 279 के रूप में एक हितकारी उपबंध है । ज. धारा 281 में उपबंधित है कि यदि न्यायालय द्वारा की गई अभियुक्त की परीक्षा को उस भाषा में लेखबद्ध किया जाता है जिसे अभियुक्त नहीं समझता है, तो उस कथन का भाषांतर उसे उस भाषा में, जिसे वह समझता है, सुनाया जाएगा और ऐसा भाषांतर सुनाए जाने के पश्चात् अभियुक्त को अपने उत्तरों का स्पष्टीकरण देने और उनमें कोई बात जोड़ने की स्वतंत्रता होगी । झ. धारा 354 के अधीन यह उपबंधित है कि किसी दंड न्यायालय के प्रत्येक विचारण में निर्णय न्यायालय की भाषा में लिखा जाना चाहिए । न तो धारा 353 और न ही धारा 354 में ऐसा कोई उपबंध है जिसमें न्यायालय से अभियुक्त को निर्णय का भाषांतर सुनाए जाने की अपेक्षा की गई हो, भले ही अभियुक्त न्यायालय की भाषा न समझता हो । दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों और विशिष्ट रूप से ऊपर निर्दिष्ट उपबंधों से जो निष्कर्ष निकाला जा सकता है वह यह है कि जहां कहीं विधान-मंडल का ऐसा आशय रहा है, वहां एक विनिर्दिष्ट उपबंध सम्मिलित करके न्यायालय से आज्ञापक रूप से कार्यवाहियों में न्यायालय की भाषा का प्रयोग करने की अपेक्षा की गई है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन रिपोर्ट/आरोप पत्र के संबंध में ऐसी कोई अपेक्षा अधिकथित नहीं की गई है । (पैरा 12, 13, 14 और 15)

दंड प्रक्रिया संहिता में दो उपबंध हैं जो किसी दांडिक मामले के विचारण की कार्यवाहियों में गलती, लोप या अनियमितता के प्रभाव के

संबंध में हैं । पहली धारा 464 है जो आरोप विरचित न करने या उसके अभाव या उसमें गलती के प्रभाव के संबंध में है । इसमें यह अधिकथित है कि ऐसे लोप, अभाव या गलती के आधार पर ही अंततोगत्वा निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश तब तक अविधिमान्य नहीं हो जाएगा, जब तक उसके कारण वस्तुत: न्याय नहीं हो पाया हो । धारा 465 में कार्यवाहियों में ऐसी किसी गलती, लोप या अनियमितता पर विचार करते हुए न्याय न होने की इसी प्रकार की कसौटी को सम्मिलित किया गया है । विचारण में गलती, लोप या अनियमितता के कारण न्याय नहीं हो पाया है, इस बात का विनिश्चय करते समय न्यायालय से इस तथ्य पर विचार करने की अपेक्षा की गई है कि क्या ऐसी आपत्ति कार्यवाहियों में पूर्वतर प्रक्रम पर उठाई जा सकती थी और उठाई जानी चाहिए थी । धारा 465 की उपधारा (2) के अधीन इस आशय का एक विनिर्दिष्ट उपबंध है । अत: किसी मामले में यदि कोई कार्य उस किसी अन्य भाषा में किया जाता है जिसे दंड प्रक्रिया संहिता में विनिर्दिष्ट रूप से न्यायालय की भाषा में किए जाने की अपेक्षा की गई है, तो इससे कार्यवाहियां स्वत: तब तक दूषित नहीं हो जाएंगी जब तक यह सिद्ध नहीं किया जाता है कि ऐसे लोप के कारण न्याय नहीं हो पाया है । इस विवाद्यक का विनिश्चय करते हुए कि क्या न्याय नहीं हो पाया है, न्यायालय को इस बात पर विचार करना होगा कि क्या आपत्ति उपलब्ध शीघ्रतम अवसर पर उठाई गई थी या नहीं । अब, धारा 173 के अधीन अंतिम रिपोर्ट/आरोप पत्र की भाषा के मुद्दे पर आते हैं । दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं है जिसमें अन्वेषण अभिकरण/अन्वेषण अधिकारी से इसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 272 के अनुसार अवधारित न्यायालय की भाषा में फाइल करने की अपेक्षा की गई हो । यदि धारा 173 में ऐसी अपेक्षा होने का अर्थ लगाया भी जाए, तो कार्यवाहियां स्वत: दूषित नहीं हो जाएंगी यदि रिपोर्ट न्यायालय की भाषा में न हो । न्याय न हो पाने की कसौटी ऐसे मामले में लागू की जाएगी जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 में अधिकथित है । धारा 207 के अधीन, विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट अभियुक्त को रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों की एक प्रतिलिपि धारा 207 में उपबंधित अनुसार प्रदाय करने के लिए आबद्धकर है । सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय मामले में धारा 208 में उपबंधित है

कि विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिलिखित किए गए कथनों और संस्वीकृतियों सहित कथनों और दस्तावेजों की प्रतिलिपियां प्रदान की जाए । जब अभियुक्त को धारा 207 और/या धारा 208 के अधीन रिपोर्ट और दस्तावेजों की प्रतिलिपियों का प्रदाय किया जाता है, तब अभियुक्त के पास यह अभिवाक् करने का अवसर उपलब्ध होता है कि वह उस भाषा को नहीं समझता है जिसमें अंतिम रिपोर्ट या कथन या दस्तावेज लिखे हुए हैं । किंतु उसे यह आपत्ति शीघ्रतम अवसर पर उठानी चाहिए । ऐसे मामले में, यदि अभियुक्त व्यक्तिगत रूप में हाजिर है और विधिक सहायता के विकल्प के बिना अपनी प्रतिरक्षा करना चाहता है, तो शायद उक्त अभियुक्त से संबंधित आरोप पत्र और दस्तावेजों या उनके सुसंगत भाग का अनूदित वृत्तांत उसे प्रदाय करने की आवश्यकता हो सकती है । तथापि, यह इस बात के अध्यधीन है कि अभियुक्त न्यायालय का यह समाधान करे कि वह उस भाषा को समझने में असमर्थ है जिसमें आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है । जब अभियुक्त का प्रतिनिधित्व किसी ऐसे अधिवक्ता द्वारा किया जाता है जो अंतिम रिपोर्ट या आरोप पत्र की भाषा को पूरी तरह से समझता है, तो अभियुक्त को अनुवाद देने की कोई आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि अधिवक्ता अभियुक्त को आरोप पत्र की अंतर्वस्तुओं को समझा सकता है । यदि अभियुक्त और उसका अधिवक्ता दोनों उस भाषा से परिचित नहीं हैं जिसमें आरोप पत्र फाइल किया गया है, तो अनुवाद उपलब्ध कराने का प्रश्न उद्भूत हो सकता है । इसका कारण यह है कि अभियुक्त को अपनी प्रतिरक्षा करने के लिए अवश्य एक उचित अवसर मिलना चाहिए । उसे आरोप पत्र में उसके विरुद्ध सामग्री की जानकारी और समझ होनी चाहिए । यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 का सार है । अनुवाद करने के लिए विभिन्न साफ्टवेयर और कृत्रिम आसूचना यंत्र (आर्टिफिसियल इंटेलिजेंस टूल्स) की उपलब्धता से अब अनुवाद मुहैया कराना इतना कठिन नहीं है । पूर्वोक्त वर्णित मामलों में, न्यायालय सदैव अभियोजन पक्ष को आरोप पत्र का अनूदित वृत्तांत मुहैया कराने का निदेश दे सकता है । किंतु हमें यह कहना होगा कि या तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 या किसी अन्य सुसंगत कानून के अधीन उपबंधित अवधि के भीतर न्यायालय की भाषा

या उस भाषा से भिन्न भाषा में, जिसे अभियुक्त नहीं समझता है, फाइल किया गया आरोप पत्र अवैध नहीं है और कोई भी उस आधार पर व्यतिक्रम जमानत का दावा नहीं कर सकता । (पैरा 16, 17, 18, 19 और 20)

अब, इस मामले के तथ्यों पर आते हैं, 2018 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 5525 से उद्भूत दांडिक अपील में विचारण न्यायालय द्वारा यह तथ्य विषयक निष्कर्ष अभिलिखित किया गया था कि प्रत्यर्थी एक शिक्षित व्यक्ति है । अपराध एक ऐसी परीक्षा से संबंधित है जिसके लिए एक पात्रता शर्त अंग्रेजी भाषा का ज्ञान होने के बारे में थी । इसके अतिरिक्त, यह पाया गया था कि उसके द्वारा रखा गया अधिवक्ता भी अंग्रेजी भाषा जानता है । अब 2022 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 10680 से उद्भूत दांडिक अपील पर आते हैं । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि प्रथम प्रत्यर्थी-अभियुक्त विज्ञान में स्नातक है और उसे अंग्रेजी भाषा का ज्ञान है । इसके अतिरिक्त, उसका अधिवक्ता अंग्रेजी भाषा से परिचित है । अत: प्रस्तुत मामले के तथ्यों में यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों अपीलों में के अभियुक्तों को आरोप पत्र और अन्य दस्तावेजों का अनुवाद प्रदाय न करने से न्याय नहीं हो पाएगा । (पैरा 21 और 22)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2023 की दांडिक अपील सं. 2592-2593.

2017 के प्रकीर्ण दांडिक मामला सं. 20941 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर न्यायपीठ के तारीख 20 नवंबर, 2017 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री विक्रमजीत बनर्जी, अपर महा सालिसिटर, रंजन कुमार चौरसिया, पदमेश मिश्रा, नवंजय महापात्रा, कार्तिक डे, सूरज मिश्रा, अभिषेक सिंह और अरविन्द कुमार शर्मा
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री सौरभ मिश्रा, अपर महाधिवक्ता, पियूष लखनपाल, अविनाश कुमार लखनपाल, यशराज सिंह बुंदेला और पवन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय एस. ओका ने दिया ।

न्या. ओका – इजाजत दी गई ।

तथ्यात्मक पहलू

2. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'दंड प्रक्रिया संहिता') की धारा 272 के अधीन राज्य सरकार को दंड प्रक्रिया संहिता के प्रयोजनों के लिए यह अवधारित करने की शक्ति है कि किसी विशिष्ट राज्य में उच्च न्यायालय से भिन्न प्रत्येक न्यायालय की कौन-सी भाषा होगी । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 6 में उपबंधित अनुसार, राज्य में विभिन्न न्यायालय होते हैं । उक्त न्यायालय हैं – सेशन न्यायालय, प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट, महानगर मजिस्ट्रेट, द्वितीय श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट और कार्यपालक मजिस्ट्रेट के न्यायालय ।

3. इन दोनों अपीलों में, हम मध्य प्रदेश राज्य में व्यापम घोटाले से उद्भूत अपराधों के संबंध में अपीलार्थी-केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा फाइल किए गए आरोप पत्रों पर विचार कर रहे हैं । आरोप पत्र भारतीय दंड संहिता की धारा 419, 420, 468, 467 और 471 के अधीन विभिन्न अपराधों और मध्य प्रदेश परीक्षा अधिनियम, 1937 की धारा 3 और 4 के अधीन फाइल किए गए हैं । 2018 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) संख्या 5525 से उद्भूत दांडिक अपील में प्रथम प्रत्यर्थी ने विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष एक आवेदन यह निदेश देने की ईप्सा करते हुए फाइल किया कि उसे अपीलार्थी द्वारा अंग्रेजी भाषा में फाइल किए गए आरोप पत्र का हिंदी अनुवाद दिया जाए । प्रथम प्रत्यर्थी-अभियुक्त की दलील यह थी कि वह अंग्रेजी भाषा में फाइल किए गए आरोप पत्र को समझने में असमर्थ है । विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अभिनिर्धारित किया कि प्रथम प्रत्यर्थी एक शिक्षित व्यक्ति है और उसे अंग्रेजी का ज्ञान है । विद्वान् न्यायाधीश ने उल्लेख किया कि अपराध परीक्षा में कपट करने के संबंध में है । लांछन यह है कि प्रथम प्रत्यर्थी को प्रवेश पत्र प्राप्त होने के पश्चात् किसी अन्य व्यक्ति ने उसका प्रतिरूपण करके परीक्षा दी थी । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने मत व्यक्त किया कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया वकालतनामा अंग्रेजी में था और प्रथम प्रत्यर्थी ने हस्ताक्षर भी अंग्रेजी में किए हैं । यह भी

अभिनिर्धारित किया गया कि प्रथम प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व कर रहे अधिवक्ता को अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान है । अत: विद्वान् मजिस्ट्रेट ने प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा किए गए निवेदन को नामंजूर कर दिया । विद्वान् मजिस्ट्रेट के आदेश की पुनरीक्षण में सेशन न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए इसमें हस्तक्षेप किया कि राज्य में दंड न्यायालयों की एकमात्र भाषा हिंदी है और इसलिए प्रथम प्रत्यर्थी न्यायालय की भाषा में आरोप पत्र के अनुवाद की ईप्सा करने का हकदार था ।

4. 2022 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) संख्या 10680 से उद्भूत दांडिक अपील में प्रथम प्रत्यर्थी भी इसी मामले में एक अभियुक्त है । उसने भी विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष एक इसी प्रकार का आवेदन किया जिसे नामंजूर कर दिया गया । प्रथम प्रत्यर्थी ने उक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी । उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अभिनिर्धारित किया कि जब आरोप पत्र अभियुक्त की अज्ञात भाषा में फाइल किया गया था, तो वह उस भाषा में आरोप पत्र के अनुवाद का हकदार था जो वह समझता है ।

5. अपीलार्थी-केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने दोनों आक्षेपित आदेशों को चुनौती दी है ।

दलीलें

6. दोनों मामलों में अपीलार्थी की दलील यह है कि अभियुक्त बहुत पढ़े-लिखे हैं और अंग्रेजी भाषा का ज्ञान है । अत: यदि आरोप पत्र अंग्रेजी भाषा में था तो इससे अभियुक्तों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है । अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी बताया गया कि व्यापम घोटाले के मामलों में आरोप पत्र बहुत भारी-भरकम हैं और आरोप पत्रों का हिंदी में अनुवाद एक अत्यधिक समय लेने वाली और खर्चीली प्रक्रिया है ।

7. अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल की दलील यह है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 272 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने हिंदी को राज्य में के दंड न्यायालयों की एकमात्र भाषा घोषित की है । उनकी दलील यह है कि

हिंदी भाषा संहिता के प्रयोजनों के लिए है और इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन फाइल किए गए आरोप पत्रों को न्यायालय की भाषा में फाइल किया जाना चाहिए था । अत: दोनों अभियुक्तों की ओर से उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का समर्थन किया गया । अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि प्रस्तुत मामले में यदि अभियुक्त उस भाषा से परिचित नहीं हैं जिस भाषा में आरोप पत्र फाइल किया गया है, तो वह अपनी उचित रूप से प्रतिरक्षा करने में समर्थ नहीं होगा क्योंकि वह पुलिस द्वारा अभिलिखित किए गए कथनों और अन्वेषण के दौरान एकत्रित किए गए अन्य दस्तावेजों को समझने की स्थिति में नहीं होगा ।

हमारा दृष्टिकोण

8. मध्य प्रदेश सरकार ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 272 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए तारीख 28 मार्च, 1974 को एक अधिसूचना जारी करके हिंदी को उच्च न्यायालय से भिन्न राज्य में के प्रत्येक न्यायालय की भाषा घोषित किया था । यदि हम दंड प्रक्रिया संहिता की स्कीम पर विचार करें, तो यह न केवल दंड न्यायालयों के समक्ष प्रक्रिया को विनियमित करती है अपितु पुलिस और अन्य अन्वेषण अभिकरणों द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया को भी विनियमित करती है । अध्याय 5 व्यक्तियों की गिरफ्तारी के संबंध में है । अध्याय 6 न्यायालय के समक्ष अभियुक्त को हाजिर होने को विवश करने के लिए जारी की जाने वाली आदेशिकाओं के संबंध में है । अध्याय 7 न्यायालय के समक्ष चीजें पेश करने को विवश करने के लिए आदेशिकाएं जारी किए जाने के संबंध में हैं । अध्याय 8 में परिशांति कायम रखने के लिए और सदाचार के लिए प्रतिभूति के संबंध में उपबंध अंतर्विष्ट हैं । उक्त अध्याय के अधीन दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन शक्तियों का प्रयोग, यथास्थिति, न्यायालयों द्वारा या कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाना होता है । अध्याय 10 में लोक व्यवस्था और प्रशांति बनाए रखने के लिए किए जाने वाले उपाय अंतर्विष्ट हैं । अध्याय 9 में धारा 125 अंतर्विष्ट है जो प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालयों को पत्नी, संतान और माता-पिता के भरण-पोषण के लिए संदाय करने का आदेश देने की शक्ति प्रदत्त करती है । अध्याय 11

पुलिस के निवारक कार्य के संबंध में है । अध्याय 12 में प्रथम इत्तिला रिपोर्टों के रजिस्ट्रीकरण और संज्ञेय और असंज्ञेय मामलों में अपराधों में के अन्वेषण से संबंधित विस्तृत उपबंध अंतर्विष्ट हैं ।

9. धारा 173 अध्याय 12 का भाग है जिसमें पुलिस रिपोर्ट के संबंध में उपबंध अंतर्विष्ट हैं जिसे आमतौर से आरोप पत्र के रूप में जाना जाता है । अत: हम दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 को उद्धृत कर रहे हैं जो इस प्रकार है :–

> "**173. अन्वेषण के समाप्त हो जाने पर पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट –** (1) इस अध्याय के अधीन किया जाने वाला प्रत्येक अन्वेषण अनावश्यक विलंब के बिना पूरा किया जाएगा ।
>
> (1क) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 376, 376क, 376कख, 376ख, 376ग, 376घ, 376घक, 376घख या 376ड. के अधीन अपराध के संबंध में अन्वेषण उस तारीख से दो माह के भीतर पूरा किया जाएगा जिस तारीख को पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा इत्तिला अभिलिखित की गई थी ।
>
> (2) जैसे ही वह पूरा होता है, वैसे ही पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी, पुलिस रिपोर्ट पर उस अपराध का संज्ञान करने के लिए सशक्त मजिस्ट्रेट को राज्य सरकार द्वारा विहित प्ररूप में एक रिपोर्ट भेजेगा, जिसमें निम्नलिखित बातें कथित होंगी :–
>
> (क) पक्षकारों के नाम ;
>
> (ख) इत्तिला का स्वरूप ;
>
> (ग) मामले की परिस्थितियों से परिचित प्रतीत होने वाले व्यक्तियों के नाम ;
>
> (घ) क्या कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है और यदि किया गया प्रतीत होता है, तो किसके द्वारा ;
>
> (ङ) क्या अभियुक्त गिरफ्तार कर लिया गया है ;
>
> (च) क्या वह अपने बंधपत्र पर छोड़ दिया गया है और यदि छोड़ दिया गया है, तो वह बंधपत्र प्रतिभुओं सहित है या प्रतिभुओं रहित ;

(छ) क्या वह धारा 170 के अधीन अभिरक्षा में भेजा जा चुका है ;

(ज) जहां अन्वेषण भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 376, 376क, 376कख, 376ख, 376ग, 376घ, 376घक, 376घख या 376ङ. के संबंध में है, वहां क्या स्त्री के चिकित्सीय परीक्षण की रिपोर्ट संलग्न की गई है ।

वह अधिकारी अपने द्वारा की गई कार्यवाही की संसूचना, उस व्यक्ति को, यदि कोई हो, जिसने अपराध किए जाने के संबंध सर्वप्रथम इत्तिला दी, उस रीति से देगा, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाए ।

(3) जहां धारा 158 के अधीन कोई वरिष्ठ पुलिस अधिकारी नियुक्त किया गया है वहां ऐसे किसी मामले में, जिसमें राज्य सरकार साधारण या विशेष आदेश द्वारा ऐसा निदेश देती है, वह रिपोर्ट उस अधिकारी के माध्यम से दी जाएगी और वह मजिस्ट्रेट का आदेश होने तक के लिए पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को यह निदेश दे सकता है कि वह आगे और अन्वेषण करे ।

(4) जब कभी इस धारा के अधीन भेजी गई रिपोर्ट से यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त को उसके बंधपत्र पर छोड़ दिया गया है तब मजिस्ट्रेट उस बंधपत्र के उन्मोचन के लिए या अन्यथा ऐसा आदेश करेगा जैसा वह ठीक समझे ।

(5) जब ऐसी रिपोर्ट का संबंध ऐसे मामले से है जिसको धारा 170 लागू होती है, तब पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट के साथ-साथ निम्नलिखित को भी भेजेगा :–

(क) वे सब दस्तावेज या उनके सुसंगत उद्धरण, जिन पर निर्भर करने का अभियोजन का विचार है और जो उनसे भिन्न हैं जिन्हें अन्वेषण के दौरान मजिस्ट्रेट को पहले ही भेज दिया गया है ;

(ख) उन सब व्यक्तियों के, जिनकी साक्षियों के रूप में परीक्षा करने का अभियोजन का विचार है, धारा 161 के अधीन अभिलिखित कथन ।

(6) यदि पुलिस अधिकारी की यह राय है कि ऐसे किसी कथन का कोई भाग कार्यवाही की विषयवस्तु से सुसंगत नहीं है या उसे अभियुक्त को प्रकट करना न्याय के हित में आवश्यक नहीं है और लोकहित के लिए असमीचीन है तो वह कथन के उस भाग को उपदर्शित करेगा और अभियुक्त को दी जाने वाली प्रतिलिपि में से उस भाग को निकाल देने के लिए निवेदन करते हुए और ऐसा निवेदन करने के अपने कारणों का कथन करते हुए एक नोट मजिस्ट्रेट को भेजेगा ।

(7) जहां मामले का अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी ऐसा करना सुविधापूर्ण समझता है वहां वह उपधारा (5) में निर्दिष्ट सभी या किन्हीं दस्तावेजों की प्रतियां अभियुक्त को दे सकता है ।

(8) इस धारा की कोई बात किसी अपराध के बारे में उपधारा (2) के अधीन मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट भेज दी जाने के पश्चात् आगे और अन्वेषण को प्रवरित करने वाली नहीं समझी जाएगी तथा जहां ऐसे अन्वेषण पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को कोई अतिरिक्त मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य मिले वहां वह ऐसे साक्ष्य के संबंध में अतिरिक्त रिपोर्ट या रिपोर्टें मजिस्ट्रेट को विहित प्ररूप में भेजेगा, और उपधारा (2) से (6) तक के उपबंध ऐसी रिपोर्ट या रिपोर्टों के बारे में, जहां तक हो सके, ऐसे लागू होंगे, जैसे वे उपधारा (2) के अधीन भेजी गई रिपोर्ट के संबंध में लागू होते हैं ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

10. जैसा कि धारा 173 की उपधारा (2) से देखा जा सकता है, पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् विद्वान् मजिस्ट्रेट को राज्य सरकार द्वारा विहित प्ररूप में उपधारा (2) में यथा वर्णित विशिष्टियां देते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए आबद्ध है । उपधारा (5) धारा 170 को शासित करने वाले मामले में लागू होती है । यह तब लागू होती है जब पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त को विद्वान् मजिस्ट्रेट के पास भेजे जाने को न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त साक्ष्य या युक्तियुक्त आधार है । ऐसे मामले में, पुलिस थाने का भारसाधक

अधिकारी रिपोर्ट के साथ उन सभी व्यक्तियों, जिनकी अभियोजन पक्ष अपने साक्षियों के रूप में परीक्षा कराना चाहता है, के धारा 161 के अधीन अभिलिखित किए गए कथनों की प्रतिलिपियों को भेजने के लिए आबद्ध है । इसमें पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को वे सभी दस्तावेज या उनके सुसंगत उद्धरणों को भी भेजने के लिए आदिष्ट किया गया है जिन पर निर्भर करने का अभियोजन का विचार है और जो उनसे भिन्न हैं जिन्हें अन्वेषण के दौरान मजिस्ट्रेट को पहले ही भेज दिया गया है । धारा 173 की उपधारा (6) में विद्वान् मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र के साथ पेश की गई सामग्री के कतिपय भागों को अभियुक्त को उनकी प्रतिलिपियां देते समय कतिपय भागों को निकाल देने की शक्ति प्रदत्त की गई है ।

11. धारा 173 को धारा 207 के साथ पढ़ा जाना होगा जिसमें यह आदिष्ट है कि पुलिस रिपोर्ट के आधार पर संस्थित मामले पर विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान करने के पश्चात् वह अभियुक्त को पुलिस रिपोर्ट, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 की उपधारा (3) के अधीन अभिलिखित कथनों की प्रतिलिपियां उनके उस भाग को छोड़कर जिसके संबंध में विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 173 की उपधारा (6) के अधीन शक्तियों का अवलंब लेते हुए आदेश पारित किया गया है, धारा 164 के अधीन लेखबद्ध की गई संस्वीकृतियों और कथनों और धारा 173 की उपधारा (5) के अनुसार पुलिस रिपोर्ट के साथ भेजे गए दस्तावेजों की प्रतिलिपियां या सुसंगत उद्धरण किसी विलंब के बिना नि:शुल्क देने के लिए आबद्ध है । जब साक्षियों के कथन या धारा 173 की उपधारा (5) के अंतर्गत आने वाले दस्तावेज अत्यधिक भारी-भरकम हैं, तो विद्वान् मजिस्ट्रेट को अभियुक्त और उसके अधिवक्ता को उक्त दस्तावेजों का उनकी प्रतिलिपियां देने की बजाय उनका निरीक्षण करने के लिए अनुज्ञा देने का विवेकाधिकार है । यह उल्लेख करना आवश्यक है कि न तो दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 12 और न ही अध्याय 16 में ऐसा कोई उपबंध है जो आरोप पत्रों/रिपोर्टों को न्यायालय की भाषा में फाइल करने के लिए आबद्धकर करता हो ।

12. दिलचस्प बात यह है कि न्यायालयों की भाषा के संबंध में उपबंध अध्याय 23 में धारा 272 के रूप में है जिसका शीर्षक "जांचों

और विचारणों में साक्ष्य" है । यह उपबंध "क – साक्ष्य लेने और अभिलिखित करने का ढंग" उप-शीर्षक के अधीन सम्मिलित है । धारा 272 इस प्रकार है :–

> "**272. न्यायालयों की भाषा** – राज्य सरकार यह अवधारित कर सकती है कि इस संहिता के प्रयोजनों के लिए राज्य के अंदर उच्च न्यायालय से भिन्न प्रत्येक न्यायालय की कौन सी भाषा होगी ।"

इस प्रकार, राज्य सरकार को यह शक्ति है कि वह अवधारण करे कि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रयोजनों के लिए राज्य के अंदर उच्च न्यायालय से भिन्न न्यायालयों की भाषा कौन-सी होगी । धारा 272 के अधीन शक्ति यह विनिश्चय करने की नहीं है कि अन्वेषण अभिकरणों या पुलिस द्वारा अन्वेषण के अभिलेख को बनाए रखने के प्रयोजनों के लिए कौन-सी भाषा प्रयोग की जाएगी । अधिक से अधिक, इस प्रयोजन के लिए राज्य की राजभाषा को शासित करने वाली विधि से संबंधित उपबंध, ऐसी अधिनियमिति में अंतर्विष्ट उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, लागू हो सकते हैं । किसी मामले में, राज्य सरकार धारा 173 की उपधारा (2) द्वारा अपेक्षित अनुसार प्ररूप विहित करते हुए यह उपबंध कर सकती है कि आरोप पत्र अवश्य राज्य की राजभाषा में फाइल किया जाना चाहिए । इसलिए धारा 272 दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन केवल न्यायालयों की भाषा के संबंध में है ।

13. यह उल्लेख करना रोचक है कि जहां कहीं विधान-मंडल का आशय रहा है, वहां न्यायालय की भाषा का प्रयोग करने की अपेक्षा को सम्मिलित करते हुए विनिर्दिष्ट उपबंध किए गए हैं । इनमें से कुछ उपबंध उन स्थितियों के संबंध में भी हैं जब अभियुक्त न्यायालय की भाषा को समझने में असमर्थ हो ।

14. हम दंड प्रक्रिया संहिता के उन सुसंगत उपबंधों का सारांश दे रहे हैं जिनका न्यायालय की भाषा के प्रश्न से कुछ सरोकार है :–

क. धारा 211 की उपधारा (6) में उपबंधित है कि आरोप न्यायालय की भाषा में लिखा जाएगा । तथापि, धारा 215 में उपबंधित है कि आरोप में किसी गलती को मामले के किसी प्रक्रम पर तब तक तात्विक नहीं समझा जाएगा जब तक कि

अभियुक्त वास्तव में गलती या लोप के कारण भ्रमित न हुआ हो और उसके कारण न्याय नहीं हो पाया हो । अत: किसी प्रस्तुत मामले में, यदि आरोप न्यायालय की भाषा में विरचित नहीं किया जाता है, तो आरोप न्यायालय की भाषा में विरचित करने में हुए लोप को तब तक तात्विक नहीं समझा जाएगा जब तक कि यह दर्शित नहीं किया जाता है कि अभियुक्त भ्रमित हुआ था और इसके परिणामस्वरूप न्याय नहीं हो पाया था ।

ख. धारा 228 अध्याय 18 का भाग है, जो सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण के संबंध में है । धारा 228 की उपधारा (2) में आदिष्ट है कि न्यायालय को अवश्य अभियुक्त को आरोप पढ़कर सुनाया और समझाया जाना चाहिए । इसका यह अर्थ है कि यदि अभियुक्त उस भाषा को नहीं समझता है जिसमें आरोप विरचित किया जाता है, तो न्यायालय को उसे उस भाषा में आरोप को समझाना होगा जिस भाषा को वह समझता है ।

ग. धारा 240, जो मजिस्ट्रेटों द्वारा वारंट-मामलों का विचारण करने के संबंध में अध्याय 18 का भाग है, में यह उपबंधित है कि आरोप लिखित रूप में विरचित किया जाएगा और विद्वान् मजिस्ट्रेट अभियुक्त को आरोप पढ़कर सुनाएगा और समझाएगा । यद्यपि यह धारा इसे आज्ञापक नहीं करती है किंतु प्रसामान्यत:, आरोप दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 272 के अनुसार अवधारित न्यायालय की भाषा में विरचित किया जाएगा । अत: यदि अभियुक्त उस भाषा से परिचित नहीं है जिस भाषा में आरोप विरचित किया जाता है, तो मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य है कि वह अभियुक्त को आरोप उस भाषा में समझाए जो भाषा वह समझता है ।

(घ) यदि हम अध्याय 18, 19, 20 और 21, जो सेशन न्यायालयों द्वारा विचारणीय मामलों, वारंट संबंधी विचारणीय मामलों, समन संबंधी विचारणीय मामलों और संक्षिप्त विचारणों के संबंध में हैं, के उपबंधों की तुलना करें तो इनमें या तो

अभियुक्त को आरोप को समझाने की अपेक्षा की गई है या अभियुक्त को अपराध की विशिष्टियां बताने की अपेक्षा की गई है । इन अपेक्षाओं को अभियुक्त को केवल उस भाषा में समझा कर पूरा किया जा सकता है, जो भाषा वह समझता है ।

ङ केवल अध्याय 21 के अधीन संक्षिप्त विचारणों के मामले में, धारा 265 के अधीन यह एक विनिर्दिष्ट उपबंध है कि मामले का अभिलेख न्यायालय की भाषा में होगा ।

च. धारा 277(ख) साक्षी को उस किसी अन्य भाषा में साक्ष्य देने के लिए अनुज्ञात करती है जो न्यायालय की भाषा नहीं है । इसमें ऐसे साक्ष्य को अभिलिखित करने की प्रक्रिया अधिकथित की गई है ।

छ. जांचों और विचारणों में साक्ष्य के संबंध में अध्याय 23 के अधीन धारा 279 के रूप में एक हितकारी उपबंध है । धारा 279 इस प्रकार है :–

"**279. अभियुक्त या उसके प्लीडर को साक्ष्य का भाषांतर सुनाया जाना** – (1) जब कभी कोई साक्ष्य ऐसी भाषा में दिया जाए जिसे अभियुक्त नहीं समझता है और वह न्यायालय में स्वयं उपस्थित है तब खुले न्यायालय में उसे उस भाषा में उसका भाषांतर सुनाया जाएगा जिसे वह समझता है ।

(2) यदि वह प्लीडर द्वारा हाजिर हो और साक्ष्य न्यायालय की भाषा से भिन्न और प्लीडर द्वारा न समझी जाने वाली भाषा में दिया जाता है तो उसका भाषांतर ऐसे प्लीडर को न्यायालय की भाषा में सुनाया जाएगा ।

(3) जब दस्तावेज औपचारिक सबूत के प्रयोजन के लिए पेश किए जाते हैं तब यह न्यायालय के स्वविवेक पर निर्भर करेगा कि वह उनमें से उतने का भाषांतर सुनाए जितना आवश्यक प्रतीत हो ।"

इस प्रकार, जहां साक्ष्य न्यायालय की उस भाषा में अभिलिखित किया जाता है जो अभियुक्त या उसके प्लीडर को समझ नहीं आती है, तो

न्यायालय पर यह आबद्धता है कि वह, यथास्थिति, अभियुक्त या उसके वकील को साक्ष्य को समझाए ।

ज. धारा 281 में उपबंधित है कि यदि न्यायालय द्वारा की गई अभियुक्त की परीक्षा को उस भाषा में लेखबद्ध किया जाता है जिसे अभियुक्त नहीं समझता है, तो उस कथन का भाषांतर उसे उस भाषा में, जिसे वह समझता है, सुनाया जाएगा और ऐसा भाषांतर सुनाए जाने के पश्चात् अभियुक्त को अपने उत्तरों का स्पष्टीकरण देने और उनमें कोई बात जोड़ने की स्वतंत्रता होगी ।

झ. धारा 354 के अधीन यह उपबंधित है कि किसी दंड न्यायालय के प्रत्येक विचारण में निर्णय न्यायालय की भाषा में लिखा जाना चाहिए । न तो धारा 353 और न ही धारा 354 में ऐसा कोई उपबंध है जिसमें न्यायालय से अभियुक्त को निर्णय का भाषांतर सुनाए जाने की अपेक्षा की गई हो, भले ही अभियुक्त न्यायालय की भाषा न समझता हो ।

15. दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों और विशिष्ट रूप से ऊपर निर्दिष्ट उपबंधों से जो निष्कर्ष निकाला जा सकता है वह यह है कि जहां कहीं विधान-मंडल का ऐसा आशय रहा है, वहां एक विनिर्दिष्ट उपबंध सम्मिलित करके न्यायालय से आज्ञापक रूप से कार्यवाहियों में न्यायालय की भाषा का प्रयोग करने की अपेक्षा की गई है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन रिपोर्ट/आरोप पत्र के संबंध में ऐसी कोई अपेक्षा अधिकथित नहीं की गई है ।

16. दंड प्रक्रिया संहिता में दो उपबंध हैं जो किसी दांडिक मामले के विचारण की कार्यवाहियों में गलती, लोप या अनियमितता के प्रभाव के संबंध में हैं । पहली धारा 464 है जो आरोप विरचित न करने या उसके अभाव या उसमें गलती के प्रभाव के संबंध में है । इसमें यह अधिकथित है कि ऐसे लोप, अभाव या गलती के आधार पर ही अंततोगत्वा निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश तब तक अविधिमान्य नहीं हो जाएगा, जब तक उसके कारण वस्तुत: न्याय नहीं हो पाया हो । धारा 465 में कार्यवाहियों में ऐसी किसी गलती, लोप या अनियमितता पर विचार करते हुए न्याय न

होने की इसी प्रकार की कसौटी को सम्मिलित किया गया है । विचारण में गलती, लोप या अनियमितता के कारण न्याय नहीं हो पाया है, इस बात का विनिश्चय करते समय न्यायालय से इस तथ्य पर विचार करने की अपेक्षा की गई है कि क्या ऐसी आपत्ति कार्यवाहियों में पूर्वतर प्रक्रम पर उठाई जा सकती थी और उठाई जानी चाहिए थी । धारा 465 की उपधारा (2) के अधीन इस आशय का एक विनिर्दिष्ट उपबंध है ।

17. अत: किसी मामले में यदि कोई कार्य उस किसी अन्य भाषा में किया जाता है जिसे दंड प्रक्रिया संहिता में विनिर्दिष्ट रूप से न्यायालय की भाषा में किए जाने की अपेक्षा की गई है, तो इससे कार्यवाहियां स्वत: तब तक दूषित नहीं हो जाएंगी जब तक यह सिद्ध नहीं किया जाता है कि ऐसे लोप के कारण न्याय नहीं हो पाया है । इस विवाद्यक का विनिश्चय करते हुए कि क्या न्याय नहीं हो पाया है, न्यायालय को इस बात पर विचार करना होगा कि क्या आपत्ति उपलब्ध शीघ्रतम अवसर पर उठाई गई थी या नहीं ।

18. अब, धारा 173 के अधीन अंतिम रिपोर्ट/आरोप पत्र की भाषा के मुद्दे पर आते हैं । दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं है जिसमें अन्वेषण अभिकरण/अन्वेषण अधिकारी से इसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 272 के अनुसार अवधारित न्यायालय की भाषा में फाइल करने की अपेक्षा की गई हो । यदि धारा 173 में ऐसी अपेक्षा होने का अर्थ लगाया भी जाए, तो कार्यवाहियां स्वत: दूषित नहीं हो जाएंगी यदि रिपोर्ट न्यायालय की भाषा में न हो । न्याय न हो पाने की कसौटी ऐसे मामले में लागू की जाएगी जैसा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 में अधिकथित है ।

19. धारा 207 के अधीन, विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट अभियुक्त को रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों की एक प्रतिलिपि धारा 207 में उपबंधित अनुसार प्रदाय करने के लिए आबद्धकर है । सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय मामले में धारा 208 में उपबंधित है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिलिखित किए गए कथनों और संस्वीकृतियों सहित कथनों और दस्तावेजों की प्रतिलिपियां प्रदान की जाएं । जब अभियुक्त को धारा 207 और/या धारा 208 के अधीन रिपोर्ट और दस्तावेजों की प्रतिलिपियों

का प्रदाय किया जाता है, तब अभियुक्त के पास यह अभिवाक् करने का अवसर उपलब्ध होता है कि वह उस भाषा को नहीं समझता है जिसमें अंतिम रिपोर्ट या कथन या दस्तावेज लिखे हुए हैं । किंतु उसे यह आपत्ति शीघ्रतम अवसर पर उठानी चाहिए । ऐसे मामले में, यदि अभियुक्त व्यक्तिगत रूप में हाजिर है और विधिक सहायता के विकल्प के बिना अपनी प्रतिरक्षा करना चाहता है, तो शायद उक्त अभियुक्त से संबंधित आरोप पत्र और दस्तावेजों या उनके सुसंगत भाग का अनूदित वृत्तांत उसे प्रदाय करने की आवश्यकता हो सकती है । तथापि, यह इस बात के अध्यधीन है कि अभियुक्त न्यायलय का यह समाधान करे कि वह उस भाषा को समझने में असमर्थ है जिसमें आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है । जब अभियुक्त का प्रतिनिधित्व किसी ऐसे अधिवक्ता द्वारा किया जाता है जो अंतिम रिपोर्ट या आरोप पत्र की भाषा को पूरी तरह से समझता है, तो अभियुक्त को अनुवाद देने की कोई आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि अधिवक्ता अभियुक्त को आरोप पत्र की अंतर्वस्तुओं को समझा सकता है । यदि अभियुक्त और उसका अधिवक्ता दोनों उस भाषा से परिचित नहीं हैं जिसमें आरोप पत्र फाइल किया गया है, तो अनुवाद उपलब्ध कराने का प्रश्न उद्भूत हो सकता है । इसका कारण यह है कि अभियुक्त को अपनी प्रतिरक्षा करने के लिए अवश्य एक उचित अवसर मिलना चाहिए । उसे आरोप पत्र में उसके विरुद्ध सामग्री की जानकारी और समझ होनी चाहिए । यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 का सार है । अनुवाद करने के लिए विभिन्न साफ्टवेयर और कृत्रिम आसूचना यंत्र (आर्टिफिसियल इंटेलिजेंस टूल्स) की उपलब्धता से अब अनुवाद मुहैया कराना इतना कठिन नहीं है । पूर्वोक्त वर्णित मामलों में, न्यायालय सदैव अभियोजन पक्ष को आरोप पत्र का अनूदित वृत्तांत मुहैया कराने का निदेश दे सकता है । किंतु हमें यह कहना होगा कि या तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 या किसी अन्य सुसंगत कानून के अधीन उपबंधित अवधि के भीतर न्यायालय की भाषा या उस भाषा से भिन्न भाषा में, जिसे अभियुक्त नहीं समझता है, फाइल किया गया आरोप पत्र अवैध नहीं है और कोई भी उस आधार पर व्यतिक्रम जमानत का दावा नहीं कर सकता ।

20. मामले का एक और पहलू है । राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण,

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो आदि जैसे केंद्रीय अभिकरण हैं । ये अभिकरण गंभीर अपराधों या व्यापक प्रभाव डालने वाले अपराधों का अन्वेषण करते हैं । स्पष्ट रूप से, ऐसे केंद्रीय अभिकरण हर मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 272 द्वारा अवधारित अनुसार संबंधित न्यायालय की भाषा में अंतिम रिपोर्ट फाइल करने की स्थिति में नहीं होंगे ।

21. अब, इस मामले के तथ्यों पर आते हैं, 2018 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 5525 से उद्भूत दांडिक अपील में विचारण न्यायालय द्वारा यह तथ्य विषयक निष्कर्ष अभिलिखित किया गया था कि प्रत्यर्थी एक शिक्षित व्यक्ति है । अपराध एक ऐसी परीक्षा से संबंधित है जिसके लिए एक पात्रता शर्त अंग्रेजी भाषा का ज्ञान होने के बारे में थी । इसके अतिरिक्त, यह पाया गया था कि उसके द्वारा रखा गया अधिवक्ता भी अंग्रेजी भाषा जानता है । अब 2022 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 10680 से उद्भूत दांडिक अपील पर आते हैं । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि प्रथम प्रत्यर्थी-अभियुक्त विज्ञान में स्नातक है और उसे अंग्रेजी भाषा का ज्ञान है । इसके अतिरिक्त, उसका अधिवक्ता अंग्रेजी भाषा से परिचित है ।

22. अत: प्रस्तुत मामले के तथ्यों में यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों अपीलों में के अभियुक्तों को आरोप पत्र और अन्य दस्तावेजों का अनुवाद प्रदाय न करने से न्याय नहीं हो पाएगा ।

23. अत: ये अपीलें सफल होती हैं और निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में जो अभिनिर्धारित किया गया है, उसके अध्यधीन रहते हुए आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते हैं । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाएगा । विचारण न्यायालय शीघ्रता से विचारण को अग्रसर करेगा ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

[2023] 4 उम. नि. प. 69

प्रमोद कुमार मिश्रा

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

[2023 की दांडिक अपील सं. 2710]

4 सितंबर, 2023

न्यायमूर्ति अभय एस. ओका और न्यायमूर्ति संजय करोल

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 307 – हत्या का प्रयत्न – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा दो अन्य सह-अभियुक्तों के साथ शिकायतकर्ता पर आयुधों से लैस होकर आक्रमण किया जाना और उसे क्षतियां कारित किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा सह-अभियुक्तों को दोषमुक्त किया जाना और अभियुक्त-अपीलार्थी को पांच वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश दिया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किया जाना – उच्चतम न्यायालय में अपील – यह एक भली-भांति स्थिर सिद्धांत है कि दंडादेश अधिरोपित करते समय मामले की गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए और अभिलेख से यह दर्शित होने पर कि अपीलार्थी-अभियुक्त और क्षतिग्रस्त शिकायतकर्ता के बीच भूमि के टुकड़े को लेकर पुरानी दुश्मनी थी और अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता को क्षतियां किसी पूर्व-चिंतन के बिना कारित की गई थीं और उसका कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं था, इसलिए ऐसी परिस्थितियों में उस पर अधिरोपित पांच वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को कम करके तीन वर्ष का कठोर करावास करना न्यायोचित होगा ।

इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि कपिल देव मिसिर (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अभि. सा. 1" कहा गया है) तारीख 12 अगस्त, 1984 को लगभग 6.00 बजे पूर्वाह्न में जब अपने मकान पर लौट रहा था तब उसने प्रमोद कुमार मिश्रा और अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों को

अपने खेत में अरहर और जुनहारी की फसलों को बर्बाद करते हुए देखा । यह देखकर अभि. सा. 1 ने हस्तक्षेप किया, जिस पर आयुधों अर्थात् लाठियों और बल्लम से लैस इन सभी अभियुक्तों ने उस पर आक्रमण किया । इस आक्रमण के परिणामस्वरूप अभि. सा. 1 को क्षतियां पहुंचीं और बेहोश हो गया । उसके पश्चात्, अभि. सा. 1 द्वारा उसी दिन उनके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत कराई गई । अन्वेषण पूर्ण करने के पश्चात् जवाहर **उर्फ** मुन्ना मिश्रा (अभि.-1), प्रमोद मिश्रा (अभि.-2, वर्तमान अपीलार्थी) और सुरेश मिश्रा (अभि.-3) के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया । विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 307 के अधीन आरोप विरचित किए गए । विचारण न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् अभि. 2 प्रमोद कुमार मिश्रा को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे पांच वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । अभि. 1 जवाहर और अभि. 3 सुरेश को दोषी न पाए जाने के कारण दोषमुक्त कर दिया गया । अभियुक्त द्वारा दोषसिद्धि के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील फाइल की गई जिसे खारिज कर दिया गया । अभियुक्त द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा केवल दंडादेश की मात्रा के प्रश्न पर विचार किया गया और अपील को भागत: मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह एक भली-भांति स्थिर सिद्धांत है कि दंडादेश अधिरोपित करते समय मामले की गुरुत्तर और कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए । यह देखा जा सकता है कि अपराध की तारीख से 39 वर्ष बीत चुके हैं और दोनों अन्य अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया गया है । आक्षेपित आदेश के अनुशीलन से पता चलता है कि यह अभिलेख लाया गया है कि शिकायतकर्ता और अभियुक्त-1 के बीच भूमि के टुकड़े के संबंध में पुरानी दुश्मनी थी जहां अपराध कारित किया गया था जबकि महत्वपूर्ण रूप से अपीलार्थी (अभियुक्त-2) अभियुक्त-1 का भतीजा है । अपीलार्थी का कोई आपराधिक

पूर्ववृत्त नहीं है जो अभिलेख पर लाया गया हो । इसके अतिरिक्त, अभिलेख से यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी ने किसी प्रकार की पूर्व-चिंतित रीति में कार्य किया था । अत: न्याय के हित में और ऊपरवर्णित कम करने वाले कारकों पर विचार करते हुए यह न्यायालय अपीलार्थी पर अधिरोपित पांच वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को कम करके तीन वर्ष का कठोर कारावास करता है । (पैरा 11, 21, 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2023]	2023 की दांडिक अपील सं. 871 : **पनीर सेल्वम** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	19
[2022]	2022 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 73 : **वीट्राइवेल** बनाम **राज्य मार्फत इसके पुलिस अधीक्षक और एक अन्य** ;	18
[2016]	(2016) 16 एस. सी. सी. 441 : **जसवीर सिंह** बनाम **तारा सिंह और अन्य** ;	17
[2015]	(2015) 6 एस. सी. सी. 652 : **पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे और एक अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	16
[2014]	(2014) 6 एस. सी. सी. 466 : **नरिन्द्र सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य** ;	14
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 537 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **संजय कुमार** ;	15
[1978]	[1978] 3 उम. नि. प. 712 = (1977) 3 एस. सी. सी. 287 : **मोहम्मद गियासुद्दीन** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	13
[1973]	[1973] 1 उम. नि. प. 36 = (1973) 1 एस. सी. सी. 20 : **जगमोहन सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ।	12

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2023 की दांडिक अपील सं. 2710.

1987 की दांडिक अपील सं. 679 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 19 अप्रैल, 2019 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री विनोद प्रसाद, ज्येष्ठ अधिवक्ता, अजय कुमार श्रीवास्तव, धीरेन्द्र कुमार, बिजेन्द्र सिंह, (सुश्री) ज्योति तिवारी और श्रीमती सन्नो कुमार

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री गर्वेश काबरा और शांतनु सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति संजय करोल ने दिया ।

न्या. करोल – इजाजत दी गई ।

2. यह अपील 1987 की दांडिक अपील सं. 679 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 19 अप्रैल, 2019 को पारित अंतिम निर्णय और आदेश से उद्भूत होती है, जिसमें द्वितीय अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, वाराणसी (जिसे इसमें इसके पश्चात् "विचारण न्यायालय" कहा गया है) द्वारा तारीख 3 मार्च, 1987 को पारित उस निर्णय और आदेश की पुष्टि की गई जिसके द्वारा वर्तमान अपीलार्थी प्रमोद कुमार मिश्रा को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और उसे पांच वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा सह-अभियुक्त जवाहर और सुरेश को दोषमुक्त कर दिया गया था ।

3. इस न्यायालय ने तारीख 10 फरवरी, 2013 के आदेश द्वारा सूचना जारी की थी, जो अपीलार्थी को दिए गए दंडादेश के प्रश्न तक सीमित थी । अत: इस न्यायालय के समक्ष जो प्रश्न उद्भूत होता है, यह है कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दंडादेश और जिसे उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखा गया है, न्यायसंगत और उचित है ?

4. अभियोजन का पक्षकथन जो अभिलेख से प्रकटित होता है तथा साथ ही जैसा कि निचले न्यायालय द्वारा उपवर्णित किया गया है, यह

है कि कपिल देव मिसिर (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अभि. सा. 1" कहा गया है) तारीख 12 अगस्त, 1984 को लगभग 6.00 बजे पूर्वाह्न में जब अपने मकान पर लौट रहा था तब उसने प्रमोद कुमार मिश्रा और अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों को अपने खेत में अरहर और जुनहारी की फसलों को बर्बाद करते हुए देखा । यह देखकर अभि. सा. 1 ने हस्तक्षेप किया, जिस पर आयुधों अर्थात् लाठियों और बल्लम से लैस इन सभी अभियुक्तों ने उस पर आक्रमण किया । इस आक्रमण के परिणामस्वरूप अभि. सा. 1 को क्षतियां पहुंचीं और बेहोश हो गया । उसके पश्चात् अभि. सा. 1 द्वारा उसी दिन 7.30 बजे पूर्वाह्न में जवाहर **उर्फ** मुन्ना मिश्रा (अभि.-1), प्रमोद मिश्रा (अभि.-2, वर्तमान अपीलार्थी) और सुरेश मिश्रा (अभि.-3) के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन 1984 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 67 रजिस्ट्रीकृत कराई गई ।

5. अन्वेषण उप निरीक्षक गौरी शंकर सिंह (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अभि. सा. 7" कहा गया है) द्वारा किया गया और उसने अन्वेषण पूर्ण करने के पश्चात् जवाहर **उर्फ** मुन्ना मिश्रा (अभि.-1), प्रमोद मिश्रा (अभि.-2, वर्तमान अपीलार्थी) और सुरेश मिश्रा (अभि.-3) के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया । विचारण न्यायालय ने मामले को 1985 के सेशन विचारण सं. 51 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया और विचारण को अग्रसर किया । अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 307 के अधीन आरोप विरचित किए गए ।

6. अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को सिद्ध करने के लिए सात साक्षियों की परीक्षा की । अभि. सा. 1, कपिल देव मिसिर क्षतिग्रस्त शिकायतकर्ता है । अभि. सा. 2-दूधनाथ और अभि. सा 3-अर्जुन सिंह अभिकथित घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं । अभि. सा. 4-डा. रामजी पांडेय ने शिकायतकर्ता का चिकित्सीय परीक्षण किया था और क्षति रिपोर्ट प्रदर्श क-2 तैयार की थी । अभि. सा. 5-डा. बराड़ सिंगूर और अभि. सा. 6-डा. एस. के. सिंह क्षतिग्रस्त शिकायतकर्ता के चिकित्सीय परीक्षण और एक्स-रे के दौरान मौजूद थे । अन्वेषण अधिकारी की अभि. सा. 7 के रूप में परीक्षा की गई थी ।

7. अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में ऐसा अपराध कारित किए जाने से इनकार किया और कथन किया कि यह मामला पुरानी दुश्मनी के कारण रजिस्ट्रीकृत किया गया था ।

8. विचारण न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् अभि. 2-प्रमोद कुमार मिश्रा को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे पांच वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । अभि. 1-जवाहर और अभि. 3-सुरेश को दोषी न पाए जाने के कारण दोषमुक्त कर दिया गया । विचारण न्यायालय के निष्कर्ष यह थे कि –

क. अभि. सा. 1, शिकायतकर्ता के इस कथन की संपुष्टि कि उस पर प्रमोद द्वारा तारीख 12 अगस्त, 1994 को बल्लम से आक्रमण किया गया था, दस्तावेजी साक्ष्य (प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श क-1 और चिकित्सीय परीक्षण प्रदर्श क-2) और अभि. सा. 4-डाक्टर की इस चिकित्सीय राय से होती है कि क्षति अधिसंभाव्यत: उस बल्लम द्वारा कारित की जा सकती थी जो उसे न्यायालय में दिखाया गया है । साथ ही, अभि. सा. 2-दूधनाथ सिंह और अभि. सा. 3-अर्जुन सिंह के परिसाक्ष्यों से अभि. सा. 1 के परिसाक्ष्य की पूरी तरह संपुष्टि होती है । कथनों पर मात्र इस कारण अविश्वास नहीं किया जा सकता कि वे कपिल देव के घनिष्ट मित्र हैं ।

9. वर्तमान अपीलार्थी से संबंधित तथ्य विषयक निष्कर्षों, दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश की इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 19 अप्रैल, 2019 के आक्षेपित आदेश द्वारा अभिपुष्टि की गई ।

10. हमारे द्वारा तारीख 10 फरवरी, 2023 के आदेश को ध्यान में रखते हुए वर्तमान अपील पर केवल दंडादेश की मात्रा के संबंध में विचार किया जाना अपेक्षित है ।

11. यह एक भली-भांति स्थिर सिद्धांत है कि दंडादेश अधिरोपित करते समय मामले की गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए ।

12. **जगमोहन सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ (पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ) ने मृत्यु की शास्ति के अधिरोपण की सांविधानिकता के प्रश्न पर विचार करते हुए इस बात पर जोर दिया कि दोषसिद्ध व्यक्ति पर दंडादेश अधिनिर्णीत करते समय गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार किए जाने की आवश्यकता है । परिणाम प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है ।

13. भारत में आज की तारीख तक कोई कानूनी दंड संबंधी नीति नहीं है । तथापि, यह न्यायालय दंड देने के पीछे के उद्देश्य और ऐसे दंड अधिरोपित करते समय ध्यान में रखे जाने वाली बातों की परीक्षा करने के लिए अग्रसर हुआ है । **मोहम्मद गियासुद्दीन** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में (दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ) यह मत व्यक्त किया गया था कि :–

> "9. ...... अपराध एक रोगविज्ञान संबंधी मतिभ्रंश है, यह कि अपराधी साधारणतया उससे बच सकता है और यह कि राज्य को चाहिए कि वह उसका पुनर्वास करे बजाय इसके कि उससे बदला ले । घटिया संस्कृति जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक विचारधारा में विकार आता है उसका प्रतिकार असम्यक् अत्याचार न करके उस संस्कृति में सुधार लाकर किया जाना चाहिए । इसलिए दंड शास्त्र में जो दिलचस्पी का विषय है वह व्यक्ति है और इसका ध्येय समाज के लिए उसे बचाना है । इस प्रकार कठोर और क्रूर दंडारोपण भूतकाल और बीते समय की निशानी है । आज मानव दंडादेश को ऐसे किसी व्यक्ति को नए सिरे से ढालने की दृष्टि से

---

[1] [1973] 1 उम. नि. प. 36 = (1973) 1 एस. सी. सी. 20.

[2] [1978] 3 उम. नि. प. 712 = (1977) 3 एस. सी. सी. 287.

देखता है जो कि अपराधी बन चुका है और आधुनिक समाज सामाजिक प्रतिरक्षा के माध्यम के रूप में अपराधी के पुनर्वास के सिलसिले में प्राथमिक तौर पर हाथ बंटाता है । इसलिए हम यह समझते हैं कि चिकित्सा विषयक न कि भयकारी दृष्टिकोण हमारे दांडिक न्यायालयों में अभिभावी होना चाहिए, चूंकि व्यक्ति का पार्श्विक बंदीकरण उसके मन में मात्र क्लेश उत्पन्न करता है ।

......

16. ...... समुचित दंडादेश अनेक तत्वों का सम्मिश्रण है, जिनके अंतर्गत अपराध की प्रकृति, अपराध को कम करने वाली या गुरुतरकारी परिस्थितियां, पूर्ववर्ती आपराधिक अभिलेख, यदि कोई हो, अपराधी की आयु, अपराधी का वृत्तिक अभिलेख, शिक्षा के प्रति-निर्देश करते हुए अपराधी की पृष्ठभूमि, उसका घरेलू जीवन, संजीदगी तथा सामाजिक सामंजस्य, अपराधी की भावनात्मक तथा मानसिक स्थिति, अपराधी के पुनर्वास की प्रत्याशा, समाज में सामान्य जीवन के साथ अपराधी के वापस आने की संभाव्यता, अपराधी के उपचार या प्रशिक्षण की संभाव्यता, इस बात की संभाव्यता कि दंडादेश अपराधी द्वारा या अन्य लोगों द्वारा किए गए अपराध के प्रति निवारक के रूप में और विशिष्ट प्रकार के अपराध की बाबत वर्तमान समाज में ऐसे निवारक की आवश्यकता, यदि कोई हो, की पूर्ति करेगा । न्यायालय द्वारा समुचित दंडादेश का विनिश्चय करते समय इन कारकों पर विचार किया जाना चाहिए ।

17. इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि न्यायाधीश में व्यापक विवेकाधिकार निहित है, विशेष रूप से तब जब अनेक तत्वों की गणना की जानी हो । समस्त अंत:करण के अनुसार नवाचार न्यायिक विवेकाधिकार का क्षेत्र है ।”

14. इसी प्रकार, **नरिन्द्र सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में (दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ) भारतीय दंड

---

[1] (2014) 6 एस. सी. सी. 466.

संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध से संबंधित पक्षकारों के बीच हुए समझौते पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया गया था :–

"i. दंड देने का उद्देश्य अक्षम कर देने, विनिर्दिष्ट भयपरतिकारिता, साधारण भयपरतिकारिता, पुनर्वास, या पुन:स्थापित करने का सम्मिश्रण हो सकता है ।

ii. भारत में आज की तारीख तक हमारे पास कोई ऐसी दंड संबंधी नीति नहीं है । ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांतों की व्यापकता का उद्देश्य न केवल भिन्न-भिन्न मामलों में दंड अधिनिर्णीत करने में सामंजस्य स्थापित करना है अपितु ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांत प्रसामान्यत: दंड संबंधी नीति भी विहित करते हैं अर्थात् क्या किसी विशिष्ट मामले में दंड अधिनिर्णीत करने का प्रयोजन भयपरतिकारिता या प्रतिकार या पुनर्वास इत्यादि से कहीं अधिक है । भारत में ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांतों के अभाव में न्यायालय विशिष्ट प्रकृति के अपराध के लिए कतिपय विनिर्दिष्ट शास्तिक परिणामों के निर्धारण के पीछे की दार्शनिकता के बारे में स्वयं अपनी धारणा के मुताबिक चलते हैं ।

iii. कुछ न्यायाधीशों के लिए भयपरतिकारिता और/या प्रतिकार अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं जबकि कोई अन्य न्यायाधीश दंड देने के उद्देश्य के रूप में पुनर्वास या पुन:स्थापन से अधिक प्रभावित हो सकता है । कभी-कभी, यह इन दोनों का सम्मिश्रण होगा जो कोई विशिष्ट दंडादेश अधिनिर्णीत करने में न्यायालय के मस्तिष्क पर प्रभाव डालेगा । तथापि, यह एक मात्रा का प्रश्न हो सकता है ।"

15. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **संजय कुमार**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने (दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ) अभिनिर्धारित किया कि न्यायालयों को न्यायसंगत और समुचित दंडादेश का विनिश्चय करने के

---

[1] (2012) 8 एस. सी. सी. 537.

प्रयोजन के लिए गुरुतरकारी और कम करने वाले कारकों तथा उन परिस्थितियों, जिनमें अपराध कारित किया गया है, में कुशलतापूर्वक संतुलन बनाना चाहिए । दोनों में संतुलन बनाना न्यायालयों का प्राथमिक कर्तव्य है ।

16. इस न्यायालय ने मामले के कतिपय प्रवर्गों में दंडों के माध्यम से भयपरतिकारिता की आवश्यक्ता का भी उल्लेख किया । **पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे और एक अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में (तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ) यह मत व्यक्त किया गया था कि इस न्यायालय के लिए महिलाओं के प्रति बढ़ते हिंसात्मक अपराधों को ध्यान में रखना आवश्यक होगा और ऐसे मामलों में न्यायालय द्वारा अपनाई गई दंडादेश संबंधी नीति के लिए एक अधिक कठोर मानदंड होना चाहिए जिससे कि वह एक भयपरतिकारी के रूप में कार्य कर सके ।

17. हाल ही में, **जसवीर सिंह** बनाम **तारा सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने (दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ) यह मत व्यक्त किया कि राज्य के लिए किसी दंडादेश संबंधी नीति के अभाव में दंडादेश देने पर कठोर सिद्धांतों का होना संभव नहीं है, तथापि, अपराध की गंभीरता, अपराध कारित करने के लिए हेतु, जिस रीति में अपराध किया गया था जैसे कतिपय कम करने वाले कारकों को ध्यान में रखे जाने की आवश्यकता है और उसके पश्चात् दंडादेश अधिरोपित किया जाए ।

18. **वीट्राइवेल** बनाम **राज्य मार्फत इसके पुलिस अधीक्षक और एक अन्य**[3] वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ, जिसमें हम में से एक (न्यायमूर्ति ओका) एक सदस्य थे, ने अपीलार्थी के भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन दंडादेश को इस तथ्य सहित कि अभियुक्त और शिकायतकर्ता के बीच उनके दुकान परिसरों के कब्जे को

---

[1] (2015) 6 एस. सी. सी. 652.

[2] (2016) 16 एस. सी. सी. 441.

[3] 2022 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 73.

लेकर पूर्ववर्ती झगड़ा था, विभिन्न कम करने वाले कारकों पर विचार करते हुए तीन वर्ष से कम करके एक वर्ष का कारावास कर दिया था ।

19. पुन: हाल ही में, **पनीर सेल्वम** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने (दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ) भारतीय दंड संहिता की धारा 304(ii) के अधीन मूल दंडादेश को न्याय के हित में और चूंकि अपीलार्थी की ओर से कोई पूर्व-चिंतन नहीं था, सात वर्ष से कम करके पांच वर्ष कर दिया था ।

20. प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर आते हैं । भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन हत्या करने के लिए प्रयत्न एक दंडनीय अपराध है जिसके लिए दस वर्ष तक के कारावास का दंड है और यदि कारित किए गए कृत्य से व्यक्ति को उपहानि कारित हुई है तब दंड को आजीवन कारावास और जुर्माने या दोनों तक विस्तारित किया जा सकता है ।

21. पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों और निचले न्यायालयों के निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए यह देखा जा सकता है कि अपराध की तारीख से 39 वर्ष बीत चुके हैं और दोनों अन्य अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया गया है । आक्षेपित आदेश के अनुशीलन से पता चलता है कि यह अभिलेख पर लाया गया है कि शिकायतकर्ता और अभियुक्त-1 के बीच भूमि के टुकड़े के संबंध में पुरानी दुश्मनी थी जहां अपराध कारित किया गया था जबकि महत्वपूर्ण रूप से अपीलार्थी (अभियुक्त-2) अभियुक्त-1 का भतीजा है ।

22. अपीलार्थी का कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है जो अभिलेख पर लाया गया हो । इसके अतिरिक्त, अभिलेख से यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी ने किसी प्रकार की पूर्व-चिंतित रीति में कार्य किया था ।

23. अत: न्याय के हित में और ऊपरवर्णित कम करने वाले कारकों पर विचार करते हुए यह न्यायालय अपीलार्थी पर अधिरोपित पांच वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश को कम करके तीन वर्ष का कठोर कारावास

---

[1] 2023 की दांडिक अपील सं. 871.

करता है । अपीलार्थी आज से छह सप्ताह के भीतर 50,000/- रुपए (पचास हजार रुपए) के जुर्माने की रकम संदाय करेगा । जुर्माने के संदाय में व्यक्तिक्रम करने पर अपीलार्थी तीन माह का कठोर कारावास भुगतेगा । जुर्माना प्रतिकर के द्वारा शिकायतकर्ता को संदत्त किया जाए ।

24. यह अपील ऊपरवर्णित निबंधनों के अनुसार भागत: मंजूर की जाती है । अपीलार्थी को उसके दंडादेश की शेष अवधि को भुगतने का निदेश दिया जाता है ।

25. लंबित आवेदन, यदि कोई है (हैं), का निपटारा हो जाता है ।

अपील भागत: मंजूर की गई ।

जस.

गतांक से आगे.......

250. **नवाब सर मीर उस्मान अली खान (मृतक)** बनाम **कमिश्नर ऑफ वेल्थ टैक्स**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 1957 के धनकर अधिनियम की धारा 2(ट) में 'मूल्यांकन की तारीख पर निर्धारिती से संबंधित' अभिव्यक्ति का अर्थान्वयन किया । इस संदर्भ में इस न्यायालय ने कानूनी उपबंध का निर्वचन करते हुए अभिनिर्धारित किया कि बिना किसी विधिक अधिकार के मात्र कब्जे के आधार पर संपत्ति को 'शुद्ध धन' अभिव्यक्ति के अर्थान्तर्गत नहीं लाया जा सकता, चूंकि वह कोई ऐसी आस्ति नहीं होगी, जो निर्धारिती से संबंधित हो । इस न्यायालय ने **राजा मोहम्मद** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का उल्लेख यह अभिलिखित करते हुए किया गया कि यद्यपि 'संबंधित' शब्द किसी आत्यंतिक स्वत्व का अर्थ निकाले जाने के प्रयोजनार्थ समर्थ नहीं है, फिर भी यह शब्द उस भाव का अतिरिक्त अर्थ निकाले जाने तक भी सीमित नहीं है । इस मामले में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :–

> "29. ... हमने उन मामलों पर चर्चा की है, जिनमें 'संबंधित' और 'स्वामित्व' के मध्य संबंधों में अंतर पर विचार किया गया है । इस मामले में निम्नलिखित तथ्य विचारार्थ प्रकट होते हैं – (1) निर्धारिती ने कब्जे, जो स्वामित्व के अनेक लक्षणों में से एक आवश्यक लक्षण है, का परित्याग कर दिया था, (2) निर्धारिती क्रेता से कब्जा प्राप्त करने का हकदार नहीं था और वह अकेले ही, जब तक कि स्वत्व का दस्तावेज निष्पादित नहीं हो जाता, अर्थात् इस मामले में क्रेता के कब्जे के अलावा अन्य लोगों के विरुद्ध कब्जे का वाद फाइल करने का हकदार था । सार्वजनिक रूप से स्वत्व निर्धारिती में निहित हो चुका था, (3) क्रेता विक्रेता के विरुद्ध अधिकारपूर्ण कब्जे में था, (4) तथापि, विधिक स्वत्व विक्रेता से संबंधित था, (5) निर्धारिती के पास स्वत्व गठित करने वाले संपूर्ण अधिकार नहीं थे, किंतु उसके पास हक का बहुत छोटा सा भाग और उस छोटे से भाग का महत्वपूर्ण तत्व था ।"

---

[1] (1986) (सप्ली.) एस. सी. सी. 700.

यह दोनों विनिश्चय, जिनका अवलंब डा. धवन द्वारा लिया गया, दर्शित करते हैं कि 'संबंधित' अभिव्यक्ति का अर्थान्वयन संदर्भ आधारित होना चाहिए । किसी विनिर्दिष्ट संदर्भ में शब्द आत्यंतिक स्वत्व का अर्थ संसूचित कर सकते हैं, किंतु अन्य तथ्यात्मक स्थितियों में शब्द किसी ऐसी बात को संसूचित कर सकते हैं, जो आत्यंतिक हित की कमी को पूरा नहीं कर सकते ।

251. वर्तमान मामले में यह सुस्पष्ट है कि वादपत्र में निर्मोही अखाड़ा द्वारा 'संबंधित' अभिव्यक्ति का प्रयोग केवल प्रबंधन और प्रभार के संदर्भ में किया गया है । निर्मोही अखाड़ा का संपूर्ण मामला धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा उनको उनके शिबायती अधिकारों से वंचित किए जाने का है । निर्मोही अखाड़ा का दावा राज्य के विरुद्ध है, जिससे कि वादी को देवता के प्रति सेवाएं समर्पित किए जाने के प्रयोजनार्थ भोगाधिकार का लाभ उठाए जाने के समर्थ बनाया जा सके । अन्य शब्दों में निर्मोही अखाड़ा प्रबंधन और प्रभार के संदर्भ में आनुषंगिक अधिकारों का दावा करता है । वास्तव में अत्यधिक महत्वपूर्ण पहलू, जो वाद संख्या 3 में चाहे गए अनुतोष के परिशीलन से प्रकट होता है, प्रथम प्रतिवादी को 'उक्त जन्मभूमि मंदिर के प्रबंधन और प्रभार से निष्कासित किए जाने और उसका कब्जा वादी को दिलाए जाने' के प्रयोजनार्थ डिक्री है । इसलिए निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किया गया वाद कब्जे के बाबत फाइल किया गया वाद, जो अनुच्छेद 142 के अर्थ और परिधि के अंतर्गत आता है, नहीं है ।

252. निर्मोही अखाड़ा ने शिबायत के अधिकारों का दावा करते हुए वाद संख्या 3 संस्थित कराया था । इस न्यायालय के चार न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **अंगूरबाला मुलिक** बनाम **देवब्रत मुलिक**[1] वाले मामले में शिबायत की प्रकृति और स्थिति पर विचार किया । न्यायमूर्ति बी. के. मुखर्जी (जो उस समय माननीय न्यायमूर्ति थे) ने न्यायालय की तरफ से निर्णय पारित करते हुए अभिनिर्धारित किया कि किसी ऐसी संपत्ति जिसका नवनिर्माण हुआ हो, के संबंध में शिबायत की स्थिति इंग्लिश

[1] [1951] एस. सी. आर. 1125.

विधि में न्यासी की स्थिति से बिल्कुल मेल नहीं खाती । इसके विपरीत हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती के मामलों में किसी समर्पित संपत्ति का स्वामित्व देवता या संस्था, जो विधिक व्यक्ति की हैसियत रखता है, को अंतरित होता है और शिबायत मात्र प्रबंधक होता है, जो देवता की संपत्तियों से संबंधित मामलों का प्रबंधन करता है । इस न्यायालय ने **विद्या वारुथी तीर्थ** बनाम **बालूसामी अय्यर**[1] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चय को उद्धृत करते हुए मताभिव्यक्ति की कि यद्यपि शिबायत प्रबंधक होता है और वह न्यासी नहीं होता, शिबायती 'मात्र एक पद' नहीं है :–

> "12. ... शिबायत न केवल बंदोबस्ती के संबंध में कर्तव्यों का निर्वहन करता है, बल्कि उस संपत्ति, जिसका नवनिर्माण हुआ है, में हिताधिकारी लाभ भी रखता है । जैसाकि न्यायिक समिति ने उपरोक्त मामलों में मताभिव्यक्ति की है, लगभग सभी बंदोबस्तियों में शिबायत नवनिर्मित संपत्ति के भोगाधिकार में अंशधारक होता है, जो संपत्ति प्रदाय की शर्तों या प्रथाओं या रूढ़ियों पर निर्भर होता है । यहां तक कि ऐसे मामलों, जिनमें शिबायत के पद के साथ कोई परिलब्धियां संलग्न न हों, में भी वह बंदोबस्ती वाली संपत्ति में कतिपय अधिकार या हित का भोग करता है जो आंशिक रूप से या कम से कम सांपत्तिक अधिकारों की प्रकृति के होते हैं । अतः शिबायती की संकल्पना में पद और संपत्ति, कर्तव्य और व्यक्तिगत हित, दोनों तत्व मिश्रित होते हैं और एक दूसरे में गुथे हुए होते हैं एक तत्व को दूसरे तत्व से पृथक् नहीं किया जा सकता । यह बंदोबस्ती वाली संपत्ति में व्यक्तिगत या सांपत्तिक हित की उपस्थिति ही है, जो शिबायत के पद को सांपत्तिक अधिकारों के तत्व के साथ योजित करती है और उसको संपत्ति के विधिक परिणामों के साथ संलग्न करती है ।"

253. मुख्य न्यायमूर्ति बी. के. मुखर्जी ने इस न्यायालय की संविधान पीठ की तरफ से **कमिश्नर, हिंदू रिलीजियस इनडाउमेंट्स,**

---

[1] ए. आई. आर. 1922 प्रिवी कौंसिल 123.

मद्रास बनाम **श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामियार ऑफ श्री शिरुर मठ**[1] वाले मामले में माताधिपति की स्थिति का अर्थान्वयन किया । इस न्यायालय ने **अंगूरबाला मुलिक** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए अपने पूर्ववर्ती विनिश्चय का उल्लेख करते हुए अभिनिर्धारित किया कि जैसाकि किसी शिबायत के मामले में होता है, उसी प्रकार से महंत के मामले में भी पद और संपत्ति, दोनों तत्वों को एक साथ मिश्रित किया जाता है :–

> "11. जहां तक माताधिपति के सांपत्तिक अधिकारों का संबंध है, न्यायिक समिति द्वारा की गई उद्घोषणाओं, जिनको वर्ष 1921 से इस देश में वैध विधि के रूप में स्वीकार किया गया है, को दृष्टि में रखते हुए यह कहना संभव नहीं होगा कि माताधिपति आजीवन किराएदार के रूप में मठ की संपत्ति की धारक हैं या उनकी स्थिति पति की संपदा के संबंध में हिंदू विधवा के समान है या इंग्लिश पादरी के समान है, जो पादरी के पद की वृद्धि धारण करता है । जैसाकि प्रिवी कौंसिल ने कहा है [विद्यया वारुथि **बनाम** बालूसामी, (48 आई. ए. 302)] वाले मामले में कहा गया है, वह संस्था का प्रबंधक या अभिरक्षक है, जिसको न्यासी के कर्तव्यों का निर्वहन करना होता है और इस प्रकार वह उत्तरदायी होता है; किंतु वह मात्र प्रबंधक नहीं होता और यह कहना उचित नहीं होगा कि महंत के पद को मात्र एक पद के रूप में वर्णित किया जाए । किसी मठ के वरिष्ठ व्यक्ति को मात्र कर्तव्यों का निर्वहन करना नहीं होता बल्कि लाभकारी चरित्र के रूप में उसका व्यक्तिगत हित भी होता है, जिसको रीतियों द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है और वह किसी नवनिर्मित संपत्ति के संबंध में शिबायत के मुकाबले अधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है । कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा [मनोहर **बनाम** भूपेन्द्र (60, कलकत्ता, 452)] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि शिबायत का पद स्वयमेव ही संपत्ति है और इस निर्णय का अनुमोदन न्यायिक समिति द्वारा गणेश **बनाम** लाल बिहारी [63

---

[1] [1954] एस. सी. आर. 1005.

आई. ए. 448] और पुनः भाबातारिणी **बनाम** आशालता [70 आई. ए. 57] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों में भी किया गया । जैसाकि प्रिवी कौंसिल द्वारा अंतिम मामले में स्पष्ट किया गया, प्रथम दोनों विनिश्चयों का प्रभाव शिबायती अधिकारों में सांपत्तिक तत्व पर जोर देना था और यह दर्शित करना था कि यद्यपि कुछ मामलों में अनिमियतता बरती गई, फिर भी यह एक अनिमियतता ही थी, जिसको हिंदू विधि में किसी पूर्ववर्ती तारीख से स्वीकार किया जाना चाहिए था । इस न्यायालय द्वारा इस दृष्टिकोण को संपूर्णता में अंगूरबाला **बनाम** देवब्रत [1951] एस. सी. आर. 1125 वाले मामले में अंगीकृत किया गया और उस मामले में शिबायती अधिकार के संबंध में जो कहा गया, वह समान प्राथमिकता के साथ महंत के पद पर भी लागू किया जा सकता था । अतः, महंत के पद की संकल्पना के मामले में, जैसाकि शिबायत के पद के संबंध में होता है, पद और समानता, कर्तव्यों और व्यक्तिगत हित, दोनों तत्वों को एक साथ मिश्रित किया जाता है और एक को दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता । बंदोबस्तियों में महंत के व्यक्तिगत या सांपत्तिक हित, जो किसी संस्था से संबद्ध हों, को उसके निस्तारण और प्रशासन की बृहत्तर शक्तियों और बंदोबस्ती वाली संपत्तियों के संबंध में सृजित व्युत्पन्न कार्यकाल के उसके अधिकार में प्रदर्शित किया जाता है; और यह अधिकार और इसी प्रकृति के अन्य अधिकार सांपत्तिक हित की प्रकृति के साथ महंत के पद में भी सम्मिलित होते हैं, जो यद्यपि किसी सीमा तक असंगत होते हैं, फिर भी वे वास्तविक विधिक अधिकार होते हैं । यह सत्य है कि महंत का पद वंशानुक्रम वाला पद नहीं है, जैसेकि सामान्य संपत्ति के मामले में होता है बल्कि यह पद अपनी विलक्षण प्रकृति के कारण और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह पद सामान्यतया तपस्वी लोगों द्वारा धारित किया जाता है जिनके संबंध उनके नैसर्गिक परिवार के साथ पूर्णतया समाप्त हो गए हैं और ऐसे मामलों में उत्तराधिकार के सामान्य नियम लागू नहीं होते ।'

अतः प्रबंधन और प्रभार के प्रयोजनार्थ निर्मोही अखाड़ा का दावा

उनके शिबायत होने के प्रकथन पर आधारित है । शिबायत के मामले में, जैसाकि पूर्वोक्त विनिश्चयों में प्राधिकारपूर्वक स्पष्ट किया गया है, पद और किसी सांपत्तिक हित के तत्वों को एक साथ मिश्रित किया जाता है । निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किया गया वाद प्रबंधन और प्रभार को पुनर्स्थापित किए जाने के लिए फाइल किया गया वाद है, जिससे कि उनको देवता के प्रति उनकी बाध्यताओं का निर्वहन करने में भोगाधिकार के लाभ प्राप्त करने के समर्थ बनाया जा सके । अत: वाद अनुच्छेद 142 के अर्थान्तर्गत कब्जे के प्रयोजनार्थ फाइल नहीं किया गया था । वाद की प्रकृति और परिधि को विस्तारित करने की ईप्सा किए जाने के प्रयोजनार्थ काउंसेल के विद्वतापूर्ण प्रयास के बावजूद हमारा यह सुस्पष्ट विचार है कि अपील में फाइल किए गए लिखित निवेदन वाद की प्रकृति में सुधार किए जाने के विधिमान्य आधार नहीं हो सकते । वाद को विचारण न्यायालय में मूल वादपत्र के आधार पर पढ़ा जाता है । वाद संख्या 3 में वादपत्र में संशोधन के बावजूद अनुतोष जिस स्थिति में है, वाद को अनुच्छेद 142 की परिधि के अंतर्गत नहीं लाते । इस प्रक्रम पर यह उल्लेख भी किया जाता है कि निवेदनों के अनुक्रम के दौरान श्री एस. के. जैन ने स्पष्ट किया कि निर्मोही अखाड़ा ने 'संबंधित' अभिव्यक्ति के प्रयोग द्वारा संपत्ति के स्वत्व या स्वामित्व का दावा नहीं किया है । निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किया गया वाद कब्जे के बाबत वाद नहीं है । इसलिए, न तो अनुच्छेद 142 और न ही अनुच्छेद 144 लागू होते हैं ।

254. **रमइय्या** बनाम **एन. नारायण रेड्डी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 1908 के परिसीमा अधिनियम की अनुच्छेद 142 और 144 (1963 के परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेदों 64 और 65 के सदृश्य) के मध्य विभेद की विस्तारपूर्वक चर्चा की, जो निम्नलिखित है :–

> "9. ... 1963 के परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 64 (1908 के परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 142) कब्जे से

---

[1] (2004) 7 एस. सी. सी. 541.

बेदखल किए जाने या उसका परित्याग किए जाने पर कब्जे के बाबत फाइल किए गए वादों पर लागू होने तक सीमित हैं । वाद को इस अनुच्छेद की परिधि के अंतर्गत लाए जाने के प्रयोजनार्थ यह दर्शित किया जाना चाहिए कि वादी कब्जे में रहा है और बाद में उसका कब्जा बेदखल या परित्याग कर दिए जाने के कारण चला गया है । इसके विपरीत 1963 के परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 65 (1908 के परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 144) एक अवशिष्ट अनुच्छेद है, जो कब्जे के लिए फाइल किए गए वादों पर लागू होता है और अन्यथा नहीं । केवल वादी के स्वत्व पर आधारित वाद, जिसमें पूर्व कब्जे और पश्चात्वर्ती बेदखली के अभिकथन समाविष्ट नहीं होते, अनुच्छेद 65 के अंतर्गत आते हैं । यह प्रश्न कि क्या किसी विशिष्ट वाद में परिसीमा के संबंध में अनुच्छेद 64 लागू होता है या अनुच्छेद 65, का निर्णय अभिवचनों के संदर्भ में किया जाना चाहिए ।"

यह मूल कारण कि क्या निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किया गया वाद पोषणीय नहीं है, परिसीमा के वर्जन से सर्वथा भिन्न कारण है । निर्मोही अखाड़ा ने इस साधारण अनुतोष की ईप्सा की है कि उनको रिसीवर से जन्मस्थान का प्रबंधन और प्रभार दिलाया जाए । रिसीवर की नियुक्ति धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा की गई थी । मजिस्ट्रेट, जिसने संपत्ति को कुर्क किया, वह उस कुर्क संपत्ति का कब्जा संपत्ति के असली स्वामी की तरफ से धारण करता है और संपत्ति का असली स्वामी सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय के समक्ष अपने अधिकारों का न्यायनिर्णयन अभिप्राप्त करता है । निर्मोही अखाड़ा ने अपनी हैसियत या अधिकारों की घोषणा की ईप्सा नहीं की । उन्होंने मात्र प्रबंधन और प्रभार हस्तगत किए जाने के लिए मजिस्ट्रेट के आदेश के विरुद्ध डिक्री की ईप्सा की । उनको किसी ऐसे पक्ष के विरुद्ध अनुतोष की ईप्सा करनी चाहिए थी, जो अपने स्वयं के अधिकार का न्यायनिर्णयन कराता और उनके दावे के विरोध में हितबद्ध होता । उन्होंने ऐसा करने के स्थान पर मजिस्ट्रेट के आदेश के विरुद्ध प्रबंधन और प्रभार हस्तगत कराए जाने के लिए मात्र डिक्री की ईप्सा की । ऐसा वाद निश्चित रूप से पोषणीय नहीं था ।

255. यदि एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिया जाता है कि न तो अनुच्छेद 47 और न ही अनुच्छेद 142 आकर्षित होता है, तो निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किया गया वाद संख्या 3 अनुच्छेद 120 के उपबंधों और 1908 के परिसीमा अधिनियम के अवशिष्ट अनुच्छेद द्वारा शासित होता है । अनुच्छेद 120 के अधीन परिसीमा की अवधि 6 वर्ष है । निर्मोही अखाड़ा का यह दावा है कि वादकारण तारीख 5 जनवरी, 1950 को उद्भूत हुआ था । वाद तारीख 17 दिसंबर, 1959 को संस्थित कराया गया था । इसलिए यह वाद परिसीमा की विहित अवधि के बाहर है और बाधित है ।

निरंतर रूप से जारी दोष

256. निर्मोही अखाड़ा की तरफ से श्री एस. के. जैन द्वारा किया गया आनुकल्पिक निवेदन 1908 के परिसीमा अधिनियम की धारा 23 के उपबंधों पर आधारित है । उन्होंने निवेदन किया कि निर्मोही अखाड़ा के प्रबंधन और प्रभार के 'आत्यंतिक' शिबायत अधिकारों से इनकार किया जाना या उनको अवरोधित किया जाना निरंतर रूप से जारी दोष है और धारा 23 के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक दिन एक नया वादकारण उद्भूत हो रहा है । धारा 23 निम्नलिखित है :–

> "23. **निरंतर रूप से जारी भंग और दोष** – निरंतर रूप से किसी संविदा के भंग के मामले और निरंतर रूप से जारी किसी ऐसे दोष के मामले में, जो किसी संविदा से स्वतंत्र दोष हो, परिसीमा की नई अवधि समय के उस प्रत्येक क्षण के साथ आरंभ हो जाएगी, जिससे भंग या दोष, जैसा भी मामला हो, जारी रहता है ।"

257. श्री एस. के. जैन ने यह दलील दी कि कुर्की का आदेश पारित हो जाने पर जन्मस्थान मंदिर के अधिकारों से संबंधित संपत्ति और उसके साथ प्रभार और प्रबंधन को ले लिया गया और वे वाद संख्या 3 की विषयवस्तु हैं । उन्होंने दलील दी कि इससे निरंतर रूप से जारी दोष तब तक गठित होता रहता है जब तक कि उनके कब्जे को पुनर्स्थापित नहीं कर दिया जाता । इस संदर्भ में उन्होंने अपने निवेदनों

के समर्थन में **सर सेठ हुकूम चंद्र** बनाम **महाराज बहादुर सिंह**[1] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलंब यह दलील देते हुए लिया कि प्रार्थना और पूजन में अवरोध निरंतर रूप से जारी दोष है । उन्होंने निवेदन किया कि रिसीवर की नियुक्ति के परिणामस्वरूप स्वतंत्र रूप से भोग और प्रार्थना के प्रबंधन के वादी के अधिकार में अवरोध धारा 23 के अर्थान्तर्गत निरंतर रूप से जारी दोष है और इसलिए अवरोध के प्रत्येक कार्य से एक नया वादकारण और परिसीमा का नया आरंभ बिंदु उद्भूत होता है ।

258. **हुकूम चंद्र** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय में श्वेताम्बरी और दिगम्बरी जैन संप्रदायों के मध्य पारसनाथ पहाड़ी के पूजन का अधिकार का विवाद अंतर्वलित था । श्वेताम्बरियों ने इस पहाड़ी का अर्जन पालगंज के राजा के सांपत्तिक अधिकारों को क्रय किए जाने के द्वारा कर लिया था । उन्होंने पहाड़ी के शीर्ष पर धर्मशालाओं के निर्माण के अतिरिक्त चौकीदार के लिए रिहायशी इकाई का निर्माण कार्य आरंभ किया । इसका दिगम्बरियों ने विरोध किया और उन्होंने श्वेताम्बरियों के विरुद्ध यह दावा करते हुए कि संपूर्ण पहाड़ी पवित्र स्थान है, वाद संस्थित कराया । पुराने देवस्थान में संतों के चरण चिह्नों की छाप समाविष्ट करने वाले चरण मौजूद थे, जिन पर कमल का फूल अंकित था । श्वेताम्बरियों ने अन्य स्वरूप के चरण अंतर्वलित किए थे, जिनका विरोध दिगम्बरियों द्वारा किया गया था और जिन्होंने उसका पूजन करने से इनकार कर दिया था । चूंकि वह मानव शरीर से पृथक् किए गए भाग का प्रतिनिधित्व करता था । दोनों ही निचली अदालतों ने अभिनिर्धारित किया कि देवस्थान में चरणों को स्थापित किए जाने का कार्य गलत था जिसके संबंध में दिगम्बरी शिकायत करने के हकदार थे । प्रिवी कौंसिल के समक्ष अधीनस्थ न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्ष के संबंध में, जो प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ, वह यह था कि दिगम्बरियों द्वारा फाइल किया गया वाद परिसीमा के भीतर था । उस संदर्भ में **सर जॉन वालिस** ने प्रिवी कौंसिल का निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

---

[1] (1933) 38 एल. डब्ल्यू. 306 (प्रिवी कौंसिल)

"जहां तक परिसीमा का संबंध है, अधीनस्थ न्यायालय ने अपर्याप्त आधारों का अवलंब लेते हुए अभिनिर्धारित किया है कि जिन कार्यों की शिकायत की गई, वे वाद फाइल किए जाने के 6 वर्षों के भीतर घटित हुए थे ताकि दावे का यह भाग अनुच्छेद 120 द्वारा बाधित किया जा सके, किंतु उन्होंने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यह कार्य उस अनुच्छेद के अधीन बाधित नहीं किया जा सकता, चूंकि यह निरंतर रूप से कारित किया जा रहा दोषपूर्ण कार्य था, जिसके संबंध में परिसीमा अधिनियम की धारा 23 के अधीन उस दिवस से प्रत्येक क्षण नई अवधि आरंभ होती रहती है, जिस दिवस से दोषपूर्ण कार्य आरंभ होता है । इसके विपरीत उच्च न्यायालय का यह विचार था कि यह निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य नहीं था और दावा अनुच्छेद 120 के अधीन बाधित है । माननीय न्यायाधीशों ने यह विचार व्यक्त किया कि अधीनस्थ न्यायाधीश यह अभिनिर्धारित करने में न्यायसंगत थे कि जिन कार्यों के बाबत शिकायत की गई, वे निरंतर रूप से किए जा रहे दोषपूर्ण कार्य थे और परिणामस्वरूप दावे का यह भाग परिसीमा द्वारा बाधित नहीं था । यह प्रश्न महारानी राजरूप कौर **बनाम** अब्दुल हुसैन [(1880) आई. एल. आर. 6 कलकत्ता 394 = (1879-80) 7 आई. ए. 240] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय द्वारा आच्छादित है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी कृत्रिम जलधारा की दिशा को मोड़ा जाना और वादी की जलापूर्ति में कटौती किया जाना दोषपूर्ण कार्य है ।"

259. उपरोक्त उद्धरण का अवलंब इस निवेदन के समर्थन में लिया गया है कि उपासना के अधिकार से वंचित किए जाने का कार्य निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य है । यह महत्वपूर्ण है कि प्रिवी कौंसिल ने **महारानी राजरूप कौर** बनाम **सैय्यद अब्दुल हुसैन**[1] वाले मामले में दिए गए पूर्ववर्ती विनिश्चय का अवलंब लिया, जिसमें वादी से संबंधित भूमि की जलापूर्ति में कटौती किए जाने के प्रयोजनार्थ कृत्रिम

[1] (1879-80) 7 आई. ए. 240.

जलधारा को मोड़े जाने का अधिकार अंतर्वलित था । **महारानी राजरूप कौर** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रिवी कौंसिल के न्यायाधीश **सर मोंटेग्यू ई. स्मिथ** ने निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अवरोधों, जिनके कारण वादी की जलापूर्ति में व्यवधान उत्पन्न हुआ, निरंतर रूप से जारी न्यूसेंस (उपताप) है :–

> "यदि न्यायाधीशों का आशय वास्तव में ऊपरनिर्दिष्ट अनुच्छेद 34 के अधीन परिसीमा को लागू करना था, तो उनके द्वारा किया गया विनिश्चय स्पष्टत: दूषित है क्योंकि वे अवरोध जिनके द्वारा वादी के महल की जलापूर्ति में व्यवधान उत्पन्न किया गया के बाबत वादकारण का नवीनीकरण दिन प्रतिदिन होता रहा और यह तब तक होता रहेगा जब तक अवरोधों के द्वारा इस प्रकार के व्यवधान को जारी रखा जाएगा । वास्तव में कानून की धारा 24 में इस बाबत अभिव्यक्त उपबंध समाविष्ट हैं ।"

260. वह उपधारणा, जो निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य गठित करती है, इस न्यायालय के विनिश्चयों द्वारा अंतर्वलित हुई है और जो प्रत्येक मामले में अंतर्वलित तथ्यात्मक संदर्भ पर आधारित होती है । **बिहार राज्य** बनाम **देवकरण नेन्शी**[1] वाले मामले में दो न्यायाधीशों द्वारा दिए गए विनिश्चय में 1952 के खान अधिनियम की धारा 66 और 79 के उपबंधों पर विचार किया गया । धारा 66 में विवरणी फाइल किए जाने में चूक के कारण शास्ति के लिए उपबंध किया गया है, जो 1,000/- रुपए तक हो सकती है । तथापि, धारा 79 में यह अनुध्यात है कि कोई न्यायालय किसी ऐसे अपराध का संज्ञान नहीं लेगा जब तक कि अपराध के तथाकथित कारण की तारीख से छह माह की अवधि के भीतर या उस तारीख से छह माह के भीतर, जिस पर अभिकथित अपराध का कारण निरीक्षक के संज्ञान में लाया गया, दोनों में से जो बाद में हो, शिकायत फाइल नहीं की जाती । तथापि, स्पष्टीकरण में यह अनुध्यात किया गया है कि यह अपराध निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य है और परिसीमा की संगणना उस प्रत्येक समयबिंदु के संदर्भ में की

---

[1] (1972) 2 एस. सी. सी. 890.

जाएगी, जिसके दौरान अपराध जारी रहा । विनियम 3 के अधीन पूर्ववर्ती वर्ष में वार्षिक विवरणी का फाइल किया जाना अपेक्षित था, जिसको प्रत्येक वर्ष 21 जनवरी या उसके पूर्व फाइल किया जाना था । इस न्यायालय ने परिसीमा के प्रश्न पर विचार करते हुए इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या विवरणी फाइल किए जाने में असफल रहने पर कारित अपराध धारा 79 (जिस स्थिति में शिकायत परिसीमा द्वारा बाधित थी) के सारभूत भाग द्वारा आच्छादित है या स्पष्टीकरण द्वारा बाधित है, जिसके अंतर्गत निरंतर रूप से जारी अपराध अंतर्वलित है । न्यायमूर्ति जे. एम. शेलट ने न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह मताभिव्यक्ति की :–

> "5. निरंतर रूप से जारी अपराध वह अपराध होता है, जो निरंतर रूप से जारी रहने के कारण अतिसंवेदनशील प्रकृति का होता है और उस अपराध से भिन्न होता है, जो केवल एक बार कारित किया जाता है । यह उन अपराधों में से एक होता है, जो विधि के किसी नियम या उसकी किसी अपेक्षा को मानने या पालन करने में विफल रहने के कारण कारित होता है, जिसके लिए दायित्व तब तक बना रहता है जब तक कि विधि के उस नियम या उसकी अपेक्षा को मान नहीं लिया जाता या उसका पालन नहीं कर लिया जाता । प्रत्येक अवसर पर जब ऐसी अवज्ञा या अननुपालन घटित होता है और पुनः घटित होता है, तो अपराध कारित हो जाता है । दोनों प्रकार के अपराधों के मध्य विभेद दोनों अपराधों के कृत्य और कारण के मध्य का अंतर होता है, जो किसी अपराध को केवल एक बार गठित करते हैं और वह कार्य या लोप जो निरंतर रूप से जारी रहता है, उस प्रत्येक समयबिंदु या अवसर पर, जब तक वह जारी रहता है एक नया अपराध गठित करता रहता है ।"

न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संपत्ति के स्वामी द्वारा सुसंगत वर्ष की तारीख 21 जनवरी को या उसके पूर्व वार्षिक विवरणी फाइल किए जाने में अतिलंघन कारित हुआ था और यह अतिलंघन उस

तारीख तक वार्षिक विवरणी प्रस्तुत किए जाने में विफल रहने पर पूर्ण हो गया था । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह उपबंध अनुध्यात नहीं करता कि संपत्ति के स्वामी या प्रबंधन दोषी होगा, यदि वह विवरणी प्रस्तुत किए बिना खान में खनन का कार्य जारी रखता है या यदि अपराध तब तक जारी रहता है, जब तक कि विनियम 3 की अपेक्षा का अनुपालन नहीं हो जाता । अन्य शब्दों में :–

> "9. ... जैसाकि किसी स्थानीय निकाय की किसी उप विधि के किसी नियम के अतिक्रमण में किसी दीवार के निर्माण के मामले में अपराध हमेशा के लिए तब पूर्ण होगा, यदि वह निर्माण किया जाता है और विहित तारीख तक विवरणी प्रस्तुत किए जाने में चूक कारित होती है ।"

261. **कमिश्नर ऑफ वेल्थ टैक्स, अमृतसर** बनाम **सुरेश सेठ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों द्वारा पारित एक अन्य विनिश्चय धन कर अधिनियम के उपबंधों पर आधारित था । धारा 18(1)(क) बिना युक्तिसंगत कारण के शुद्ध धन की विवरणी फाइल किए जाने में विफल रहने पर शास्ति के अधिरोपण के लिए उपबंधित करती है । इस न्यायालय के समक्ष यह विवाद्यक उद्भूत हुआ कि क्या कोई विवरणी फाइल किए जाने में चूक के कारण निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य कारित होता है । न्यायमूर्ति ई. एस. वेंकटरमइय्या (जो उस समय मुख्य न्यायमूर्ति थे) ने न्यायालय की तरफ से निर्णय पारित करते हुए अभिनिर्धारित किया :–

> "11क. विधि की दृष्टि में दायित्व सामान्यतया किसी कार्य के कारण या लोप के कारण उद्भूत होता है । जब व्यक्ति कोई कार्य करता है, जिसको किए जाने से विधि प्रतिषिद्ध करती है और उसके किए जाने पर शास्ति अधिरोपित करती है, तो यह कहा जाता है कि उसने कोई ऐसा कार्य कारित किया है, जो विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है । इसी प्रकार से जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे कार्य के कारण का लोप करता है, जो उसके द्वारा विधि द्वारा

---
[1] (1981) 2 एस. सी. सी. 790.

किया जाना आशयित है और ऐसे लोप के लिए शास्ति अधिरोपित की जाती है, तो यह कहा जाता है कि उसने किसी ऐसे कार्य का लोप कारित किया है, जो विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण कार्य है । सामान्यतया विधि के अंतर्गत कोई दोषपूर्ण कार्य या किसी कार्य को संपादित किए जाने में विफलता कोई पूर्ण कार्य बन जाता है या कार्य या कार्य का लोप बन जाता है, जैसा भी मामला हो । जैसे ही किसी पूर्ववर्ती मामले में कोई दोषपूर्ण कार्य कारित किया जाता है और किसी पश्चात्वर्ती मामले में किसी कार्य को संपादित किए जाने में विधि द्वारा विहित समय व्यतीत हो जाता है और उससे उद्भूत होने वाला दायित्व अधिरोपित हो जाता है, जैसे ही कारण या लोप का कार्य पूर्ण हो जाता है ।"

इस न्यायालय ने निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य और किसी दोषपूर्ण कार्य या चूक, जो कारित किए जाने पर पूर्ण हो जाता है, के मध्य अंतर करते हुए निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

"11. ...किसी निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य की सुभिन्न प्रकृति यह है कि उस कार्य के द्वारा विधि, जिसका अतिक्रमण किया गया, दोषपूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति को शास्ति के लिए निरंतर रूप से दायी ठहराता है । तथापि, कोई दोषपूर्ण कार्य या चूक, जो पूर्ण हो चुका है, किंतु जिसका प्रभाव पूर्ण हो जाने के पश्चात् निरंतर महसूस किया जाएगा, निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य या चूक नहीं होता ।"

इस न्यायालय ने कानून के उपबंधों पर विचार करते हुए अभिनिर्धारित किया कि यह चूक ऐसी चूक है, जो विवरणी फाइल किए जाने की अंतिम तारीख के व्यतीत हो जाने के पश्चात् घटित होती है और यह निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण नहीं है और आगे यह अभिनिर्धारित किया :–

"17. सत्य सिद्धांत यह प्रतीत होता है कि जहां किसी दोषपूर्ण कार्य की शिकायत की गई हो, वह किसी निश्चायक कर्तव्य, जिसके द्वारा किसी व्यक्ति से कोई कार्य के किए जाने की

अपेक्षा की जाती है, का निर्वहन किए जाने में किया गया लोप है और इस लोप को विनिर्धारित किए जाने का परीक्षण यह है कि क्या वह दोषपूर्ण कार्य वही दोषपूर्ण कार्य है और क्या प्रश्नगत कर्तव्य वही प्रश्नगत कर्तव्य है, जिसका निर्वहन करने की अपेक्षा उससे की गई है । परिसर में उचित मरम्मत कराए जाने के बाबत की गई प्रसंविदा में भंग, निरंतर रूप से जारी प्रत्याभूति का भंग, रास्ते के अधिकार में व्यवधान, किसी व्यक्ति के जल के अबाध प्रवाह के अधिकार में व्यवधान, किसी व्यक्ति द्वारा अपनी पत्नी और बच्चों के भरणपोषण, जिनके भरणपोषण के लिए वह विधि के अंतर्गत बाध्य है, से इनकार किया जाना और उन उपायों का अनुपालन किए बिना, जो किसी कर्मकार की सुरक्षा और कल्याण के लिए आशयित हैं, खनन क्रियान्वयन किया जाना या कोई कारखाना चलाना निरंतर रूप से जारी भंग या दोषपूर्ण कार्यों के ऐसे उदाहरण हैं, जिनसे दिन-प्रतिदिन सिविल या दांडिक दायित्व उद्भूत होते है, जैसा भी मामला हो ।"

इस न्यायालय के विचार में धारा 18(1)(क) में उल्लिखित कार्यों में से किसी भी कार्य का निर्वहन न किए जाने के कारण एकल भंग और एकल शास्ति का मामला उद्भूत होता है । तथापि, यह एक ऐसा उपाय है, जो उस समयावधि से संबंधित होता है, जिसके मध्य अंतिम तारीख जिसको विवरणी फाइल की जानी है और वह तारीख जिस पर वह वास्तव में फाइल की गई ।

262. अन्य राजस्व कानून, जो 1961 का आयकर अधिनियम है, के उपबंधों पर **माया रानी पुंज** बनाम **सी. आई. टी.**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया । इस मामले में 1961 के आयकर अधिनियम की धारा 271(1)(क) द्वारा विलंब से विवरणी फाइल किए जाने के कारण शास्ति अधिरोपित की गई थी । यह शास्ति न केवल प्रथम चूक पर जब तक वह चूक जारी रहती, अधिरोपित किए जाने योग्य थी । निर्धारिती ने नियत तारीख के व्यतीत

[1] (1986) 1 एस. सी. सी. 445.

हो जाने के सात माह से अधिक अवधि के पश्चात् विवरणी फाइल की थी । इस प्रश्न पर तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **सुरेश सेठ** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अननुमोदन किया । न्यायमूर्ति सब्यसांची मुखर्जी (जो तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति थे) ने अभिनिर्धारित किया कि चूक तब तक जारी रही जब तक विवरणी फाइल नहीं कर दी गई और इसलिए यह चूक निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य था :–

> "19. शास्ति का अधिरोपण, जो प्रथम चूक तक सीमित नहीं होता बल्कि निरंतर रूप से की जा रही चूकों के संदर्भ में होता है, निश्चित रूप से इस आधार पर होता है कि विवरणी फाइल किए जाने की बाध्यता का अननुपालन, जब तक व्यतिक्रम जारी रहता है, व्यतिक्रम होता है । विधि की आज्ञा के बिना चूक के आचरण के संबंध में कोई शास्ति अधिरोपित नहीं की जा सकती । यह स्थिति कि शास्ति न केवल प्रथम व्यतिक्रम के आधार पर बल्कि जब तक चूक जारी रहती है, अधिरोपित की जा सकती है और उस शास्ति की संगणना मासिक आधार पर विहित दर पर की जानी चाहिए, जो इस अचूक आधार पर विधायी आशय को उपदर्शित करता है कि जब तक निर्धारिती विधि की अपेक्षाओं का पालन नहीं करता, वह व्यतिक्रम का दोषी बना रहता है और स्वयं को विधि द्वारा उपबंधित शास्ति के संदाय के लिए उत्तरदायी बनाता है ।"

263. सेवा विधिशास्त्र के संदर्भ में निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य का सिद्धांत लागू किए जाने से संबंधित विवाद **भारत संघ** बनाम **तरसेम सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष उपस्थित हुआ । इस मामले में प्रत्यर्थी को भारतीय सेना द्वारा नवंबर, 1983 में चिकित्सीय आधारों पर अक्षम घोषित कर दिया गया था । प्रत्यर्थी ने 1999 में अक्षमता की पेंशन की ईप्सा करते हुए उच्च न्यायालय की शरण ली थी । उच्च न्यायालय ने अक्षमता पेंशन के संदाय के लिए परमादेश जारी कर दिया, किंतु उन्होंने उस

---

[1] (2008) 8 एस. सी. सी. 648.

पेंशन को रिट याचिका संस्थित कराए जाने के पूर्व की 38 माह की अवधि तक के लिए निर्बंधित कर दिया । तथापि, प्रत्यर्थी का दावा यह था कि अक्षमता पेंशन नवंबर, 1983 से प्रदान की जानी चाहिए जिसको उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा लैटर्स पेटेंट अपील में मंजूर कर लिया गया । उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिए गए उपरोक्त विनिश्चय को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए न्यायमूर्ति आर. बी. रविन्द्रन ने मताभिव्यक्ति की कि इस सिद्धांत के बाबत कि सेवा के संबंध में किया गया विलंबित दावा विलंब और चूकों के आधार पर अस्वीकृत किए जाने योग्य है, फिर भी निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य के संबंध में एक स्थिरीकृत अपवाद भी उपलब्ध है । तथापि, इस अपवाद का एक अन्य अपवाद भी उपलब्ध है, जिसमें शिकायत किसी ऐसे विनिश्चय के संबंध में की जाती है, जो अन्य लोगों की सेवा को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती है । इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :–

> "7. संक्षेप में, सामान्यत: विलंबित सेवा संबंधी दावा (जिसमें रिट याचिका फाइल किए जाने के द्वारा अनुतोष की ईप्सा की गई) विलंब और चूकों या परिसीमा (जिसमें प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किए जाने के द्वारा अनुतोष की ईप्सा की गई) के आधार पर अस्वीकृत कर दिया जाएगा । उक्त नियम के अनेक अपवादों में से एक अपवाद निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्यों से संबंधित मामले हैं । जहां कोई सेवा संबंधी दावा किसी निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य पर आधारित होता है, तो अनुतोष तभी प्रदान किया जा सकता है, यदि अनुतोष की ईप्सा करने में लंबा विलंब उस तारीख के संदर्भ में, जिस पर निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य आरंभ किया गया और यदि ऐसा निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य क्षति का निरंतर स्रोत सृजित करता है । किंतु इस अपवाद का भी अपवाद है । यदि शिकायत किसी आदेश या प्रशासनिक विनिश्चय, जिसके कारण अनेक अन्य लोग प्रभावित हुए या जो अनेक अन्य लोगों से भी संबंधित हैं, के संबंध में फाइल

की गई है और यदि उस विवाद्यक पर पुनर्विचार के कारण तृतीय पक्षों के स्थिरीकृत अधिकार प्रभावित होंगे, तो ऐसे दावे पर विचार नहीं किया जाएगा । उदाहरणस्वरूप यदि विवाद्यक वेतन या पेंशन के संदाय या पुनर्निर्धारण से संबंधित है, तो अनुतोष विलंब के बावजूद प्रदान किया जा सकता है, चूंकि ऐसा अनुतोष किसी तृतीय पक्ष को प्रभावित नहीं करता । किंतु दावे में अन्य लोगों को प्रभावित करने वाले वरिष्ठता या प्रोन्नति इत्यादि से संबंधित विवाद्यक अंतर्वलित हैं, तो ऐसा विलंब दावे को पुराना कर देगा और ऐसी स्थिति में चूकों/परिसीमा का सिद्धांत लागू किया जाएगा । जहां तक किसी पिछली अवधि के बाबत बकाए की वसूली के परिणामिक अनुतोष का संबंध है, बारम्बार/क्रमिक दोषपूर्ण कार्यों से संबंधित सिद्धांत लागू होगा ।"

अपील में यह अभिनिर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय रिट याचिका संस्थित किए जाने के पूर्व तीन वर्षों की अवधि के परे बकाए के बाबत संदाय के लिए निर्देशित करने में न्यायसंगत नहीं था ।

264. उपरोक्त निर्णयों में से अनेक निर्णयों में **बालकृष्ण सावलराम पुजारी बाघमारे** बनाम **श्री धानेश्वर महाराज संस्थान**[1] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय का उल्लेख किया गया है । अपीलार्थियों का दावा धार्मिक संस्था में वंशानुगत उपासकों के अधिकारों के बाबत था और उनकी दलील थी कि उनके पूर्वज मंदिर के कब्जे में थे और देवस्थान के पूजन सहित उसके प्रबंधन के मामलों को देखते थे । न्यासियों ने अवचार के आधार पर कुछ पुजारियों को सेवा से बर्खास्त कर दिया था । इसी दौरान वर्ष 1922 में पुजारियों ने मंदिर का बलपूर्वक कब्जा ले लिया । न्यासियों ने वाद संस्थित कराया जिसमें डिक्री पारित हो गई । इस वाद की डिक्री के निष्पादन में मंदिर का कब्जा प्राप्त कर लिया गया । तत्पश्चात् पुजारियों ने धार्मिक संस्था के वंशानुगत अधिकारों का दावा करते हुए

---

[1] [1959] (सप्ली.) 2 एस. सी. आर. 476.

वाद संस्थित कराया । उच्च न्यायालय ने इस वाद में पारित डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई अपील में अभिनिर्धारित किया कि इस मामले में परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 120 लागू होता है और वाद इस अनुच्छेद द्वारा विहित छह वर्षों की अवधि के परे संस्थित कराया गया है । इस न्यायालय के समक्ष फाइल की गई अपील में यह दलील दी गई कि वाद अनुच्छेद 120 के अधीन बाधित नहीं था क्योंकि न्यासियों द्वारा निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्यों के आचरण के कारण परिसीमा अधिनियम की धारा 23 लागू होती है । न्यायमूर्ति पी. बी. गजेन्द्रगडकर (जो उस समय माननीय मुख्य न्यायमूर्ति थे) ने इस दलील पर विचार करते हुए अभिनिर्धारित किया :–

> "31. इस दलील पर विचार करते हुए यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि अनुच्छेद 23 निरंतर रूप से जारी अधिकार को नहीं बल्कि निरंतर जारी दोषपूर्ण कार्य को निर्दिष्ट करती है । निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य का आत्यंतिक सार निरंतर रूप से जारी क्षति का स्रोत सृजित करता है और क्षति कारित करने वाले को उत्तरदायी ठहराता है और उस क्षति को जारी रखने के लिए दायी ठहराता है । यदि दोषपूर्ण कार्य के कारण ऐसी क्षति कारित होती, जो पूर्ण हो जाती है, तो यह निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य नहीं है यद्यपि यह संभव है कि इस कार्य के परिणामस्वरूप होने वाला नुकसान जारी रहे । तथापि, यदि कोई दोषपूर्ण कार्य ऐसी प्रकृति का है कि उसके द्वारा कारित क्षति स्वयमेव जारी रहती है, तो वह कार्य निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य गठित करता है । इस संबंध में यह आवश्यक है कि दोषपूर्ण कार्य द्वारा कारित क्षति और वह कार्य जिसको उस क्षति के परिणामस्वरूप क्षति के रूप में वर्णित किया जा सकता हो, के मध्य विभेद किया जाए । यह केवल उन कार्यों के संबंध में हो सकता है, जिनको निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य के रूप में उचित रूप से वर्णित किया जा सकता हो और जिनके संबंध में धारा 23 का अवलंब लिया जा सकता हो ।"

265. न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि न्यासियों द्वारा वंशानुगत उपासकों के रूप में अपीलार्थियों के अभिकथित अधिकारों को समाप्त किए जाने और 1922 के वाद में उनसे कब्जा प्राप्त किए जाने का दावा किए जाने और कब्जा अभिप्राप्त किए जाने के कार्य को निरंतर रूप से किया जाने वाला दोषपूर्ण कार्य अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि न्यासियों द्वारा प्राप्त की गई डिक्री के कारण उपासकों के अधिकारों को प्रभावी ढंग से और पूर्णतया क्षतिग्रस्त कर दिया गया है और यह नुकसान बाद में भी जारी रहा । डिक्री के निष्पादन पर अपीलार्थियों के अधिकार पूर्णतया क्षतिग्रस्त हो गए थे और यद्यपि उनका कब्जा बना रहा, किंतु यह अभिनिर्धारित किया गया कि उनके द्वारा निरंतर रूप से दोषपूर्ण कार्य गठित नहीं होता । उस संदर्भ में न्यायालय ने यह उल्लेख किया :–

> "हम समझते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि जहां किसी दोषपूर्ण कार्य, जिसकी शिकायत की गई, के परिणामस्वरूप किसी को बेदखल कर दिया जाता है और इसके परिणामस्वरूप उसके अधिकार को होने वाली क्षति बेदखली की तारीख से पूर्ण हो जाती है और ऐसी स्थिति में ऐसे किसी भी मामले में धारा 23 के लागू होने की कोई परिधि शेष नहीं होगी । यह विचार उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया और हम इस विचार से विसम्मत होने का कोई कारण नहीं पाते ।"

इस न्यायालय ने **महारानी राजरूप कौर** बनाम **सैय्यद अब्दुल हुसैन**[1] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चय को इस आधार पर विभेदित किया कि यह मामला एक ऐसा मामला था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि जल के प्रवाह पर निरंतर रूप से अवरोध कारित किया जा रहा था, जो निरंतर रूप से जारी न्यूसेंस (उपताप) की प्रकृति में था । इसी प्रकार से **सर सेठ हुकूम चंद** बनाम **महाराज बहादुर सिंह**[2] वाले मामले में दिया गया विनिश्चय है, जिसका

---

[1] (1879-80) 7 आई. ए. 240.

[2] (1933) 38 एल. डब्ल्यू. 306 (प्रिवी कौंसिल).

अवलंब महारानी **राजरूप कौर** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए पूर्ववर्ती विनिश्चय में लिया गया । इस विनिश्चय को विभेदित करते हुए इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वह कार्रवाई, जिसको आक्षेपित किया गया, वादियों के निष्कासन या संपूर्ण बेदखली की कार्यवाही नहीं थी ।

266. जैसाकि इस न्यायालय द्वारा **बालकृष्ण सावलराम** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, निरंतर रूप से जारी कोई दोषपूर्ण कार्य ऐसा कार्य होता है, जो निरंतर रूप से कारित क्षति के स्रोत को सृजित करता है । यह कार्य उस कार्य को करने वाले को क्षति की निरंतरता के प्रति दायी बनाता है । तथापि, जहां किसी दोषपूर्ण कार्य के परिणामस्वरूप किसी का निष्कासन हो जाता है, जैसाकि वर्तमान मामले में हुआ है, उस कार्य के परिणामस्वरूप क्षति निष्कासन की तारीख पर ही पूर्ण हो जाती है । कोई दोषपूर्ण कार्य या व्यतिक्रम, जिसके परिणामस्वरूप क्षति पूर्ण हो जाती है, निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य या व्यतिक्रम नहीं होता । यद्यपि, इसका प्रभाव इसके पूर्ण हो जाने के बाद भी निरंतर रूप से महसूस किया जा सकता है ।

267. परिसीमा के अभिवाक् की प्रतिरक्षा में निर्मोही अखाड़ा का निवेदन निरंतर रूप से किए जा रहे दोषपूर्ण कार्य के सिद्धांत पर आधारित है । इस निवेदन का मूल्यांकन करते हुए विधिक क्षति के स्रोत और क्षति के प्रभाव के मध्य विभेद किया जाना चाहिए । विधिक क्षति का स्रोत किसी बाध्यता के भंग पर आधारित होता है । निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य तब घटित होता है जब किसी विशिष्ट तरीके से कार्य को जारी रखे जाने या उससे विरत रहने के बाबत विधि द्वारा, करार द्वारा या अन्यथा रूप से कोई बाध्यता अधिरोपित की जाती है । ऐसी किसी बाध्यता का भंग एकल रूप से पूर्ण किए गए किसी कार्य या लोप के परे होता है । भंग निरंतर रूप से जारी प्रकृति का होना चाहिए, जिसके कारण कोई विधिक क्षति उद्भूत हुई हो, निरंतर रूप से जारी ऐसा भंग दोषपूर्ण कार्य की प्रकृति धारण कर लेता है । निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य के उद्भूत होने के प्रयोजनार्थ सर्वप्रथम ऐसा कोई

दोषपूर्ण कार्य अस्तित्व में होना चाहिए, जो कार्रवाई योग्य हो क्योंकि किसी दोषपूर्ण कार्य की अनुपस्थिति में निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य गठित नहीं हो सकता । ऐसा तब होता है जब कोई दोषपूर्ण कार्य अस्तित्व में हो, जिसके कारण आगे जांच की कोई कार्रवाई, चाहे निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य उद्भूत हुआ हो, की संभावना हो । बिना किसी दोषपूर्ण कार्य के निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य अस्तित्व में नहीं आ सकता । दोषपूर्ण कार्य ऐसी बाध्यता के भंग के बाबत अनुध्यात करता है, जो किसी व्यक्ति पर किसी विशिष्ट तरीके में कार्य करने या उस कार्य को करने से विरत रहने के प्रयोजनार्थ सकारात्मक रूप से अधिरोपित की जाती है या नकारात्मक रूप से । किसी व्यक्ति पर इस प्रकार की बाध्यता किसी अधिकार का संगत प्रतिबिम्ब होती है, चाहे वह विरासत में मिली हो या अन्य प्रकार से । निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य, जो निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य की प्रकृति का होता है, निरंतर रूप से जारी किसी कर्तव्य या बाध्यता का भंग अनुध्यात करता है । वास्तव में यही **माया रानी पुंज** (उपरोक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय का आधार था, जिसका अनुमोदन कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय में निम्नलिखित शब्दों में किया गया :–

> "जी. डी. भट्टर **बनाम** राज्य (ए. आई. आर. 1957 कलकत्ता 483 = 61 सी. डब्ल्यू. एन. 660 = 1957 क्रिमिनल ला जर्नल 834) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि निरंतर रूप से जारी अपराध या दोषपूर्ण कार्य अंततः कर्तव्य के निरंतर रूप से जारी भंग है । यदि कोई कर्तव्य दिन-प्रति-दिन जारी रहता है, तो उसका दिन-प्रति-दिन निर्वहन न किया जाना निरंतर रूप से दोषपूर्ण कार्य है ।"

अतः, इस बात का मूल्यांकन किए जाने के प्रयोजनार्थ कि क्या धारा 23 के अर्थान्तर्गत निरंतर रूप से दोषपूर्ण कार्य जारी है, मात्र यह तथ्य कि कारित क्षति का प्रभाव, जो निरंतर रूप से जारी रहा, उस कार्य

को निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य के रूप में गठित करने के लिए पर्याप्त नहीं है । उदाहरण के लिए जब किसी दोषपूर्ण कार्य या लोप के परिणामस्वरूप, जिसकी शिकायत की गई है, कोई दोषपूर्ण कार्य पूर्ण हो जाता है, तो निरंतर रूप से जारी कोई दोषपूर्ण कार्य उद्भूत नहीं होता यद्यपि उसका प्रभाव या नुकसान, जिसको बर्दाश्त किया गया, भविष्य में घटित हो सकता है । दोषपूर्ण कार्य को क्या गठित करता है, निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण प्रकृति का कार्य कर्तव्य का भंग है, जो समाप्त नहीं हुआ है बल्कि विद्यमान है । ऐसे किसी कर्तव्य का भंग निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य को सृजित करता है और इस प्रकार परिसीमा के अभिवाक् के रक्षोपाय का अवलंब लिया गया है ।

268. वर्तमान मामले में निर्मोही अखाड़ा के इस निवेदन कि ऐसा कोई दोषपूर्ण कार्य था जो निरंतर रूप से किया जा रहा था, को स्वीकार किए जाने में अनेक कठिनाइयां हैं । प्रथम और महत्वपूर्ण बात यह है कि धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट के आदेश का प्रयोजन और उद्देश्य कब्जा प्राप्ति के द्वारा शांति भंग को रोकना था, जैसाकि निष्कर्ष मजिस्ट्रेट द्वारा आदेश की तारीख पर निकाला गया । मजिस्ट्रेट अधिकारों का न्यायनिर्णयन नहीं करता और न ही उसकी कार्यवाही स्वत्व के प्रश्न पर विनिश्चय में परिणित होती है । मजिस्ट्रेट का आदेश सिविल न्यायालय की डिक्री या आदेश के अध्यधीन होता है । इसलिए, यह अनुध्यात किया जाना कि मजिस्ट्रेट के आदेश के परिणामस्वरूप कोई दोषपूर्ण कार्य घटित होगा, जिसके परिणामस्वरूप निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य घटित होता रहेगा, अंतर्निहित रूप से गलत निष्कर्ष है । द्वितीयतः, क्या 22 और 23 दिसंबर, 1949 की मध्यरात्रि को छल से मूर्तियां स्थापित किए जाने के कारण निर्मोही अखाड़ा के पक्ष में कोई अधिकार सृजित हुआ ? निर्मोही अखाड़ा ने ऐसी किसी भी घटना से पूर्णतया इनकार किया । वह अधिकार जिसका दावा निर्मोही अखाड़ा ने दृढ़तापूर्वक किया है, इस आधार पर प्राप्त नहीं किया जा सकता और यदि उनका कोई अधिकार ही नहीं है, तो संगत रूप से ऐसा कोई दोषपूर्ण कार्य भी नहीं हो सकता, जो निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य का

आधार बन सके । निर्मोही अखाड़ा का ऐसा कोई अंतर्निहित अधिकार नहीं है, जिसके कारण मजिस्ट्रेट के आदेश से व्यवधान उत्पन्न हुआ । निर्मोही अखाड़ा द्वारा भीतरी बरामदे का प्रबंधन और प्रभार प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ शिबायत की हैसियत में दावा किया गया था । निर्मोही अखाड़ा ने स्वयं ही यह अभिवाक् किया है कि वादकारण तारीख 5 जनवरी, 1950 को उद्भूत हुआ था । इस प्रकथन के आधार पर कार्यवाही से यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्मोही अखाड़ा द्वारा शिबायत की भूमिका से जिस बेदखली का प्रकथन किया गया है, वह वास्तव में घटित हुई थी और इसलिए निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य के सिद्धांत का प्रश्न आकर्षित नहीं होता ।

269. **इल्लप्पा नायकेन** बनाम **के. लक्ष्मणा नायकेन**[1] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित विनिश्चय से निर्मोही अखाड़ा की कोई सहायता नहीं होती । एक ऐसा भी मामला था, जिसमें धारा 145 के अधीन कार्यवाही के लंबन के दौरान मजिस्ट्रेट ने रिसीवर की नियुक्ति के लिए धारा 146 के अधीन आदेश पारित किया था क्योंकि न्यायालय का इस बाबत समाधान नहीं हुआ था कि कौन सा पक्ष कब्जे में है । प्रत्यर्थियों ने स्वत्व और कब्जे की घोषणा के लिए वाद फाइल किया था, जिसको उपस्थिति में चूक के कारण खारिज कर दिया गया था और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 9 के अधीन वाद खारिज करने वाले आदेश को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसको भी खारिज कर दिया गया था । इस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील को भी खारिज कर दिया गया था । तत्पश्चात् याची, जो प्रतिवादी था, ने वाद खारिज हो जाने के पश्चात् मजिस्ट्रेट के समक्ष कब्जे के लिए आवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया कि जिला मुन्सिफ ने उसके अधिकारों का विनिर्धारण कर दिया था । मजिस्ट्रेट ने यह अभिनिर्धारित करते हुए आदेश पारित किया कि सिविल न्यायालय द्वारा इस बाबत कोई घोषणात्मक अनुतोष प्रदान नहीं किया गया था कि वादग्रस्त परिसर का हकदार कौन है और इसलिए भूमि पर

[1] ए. आई. आर. 1949 मद्रास 71.

रिसीवर का कब्जा बना रहेगा । इस संदर्भ में विद्वान् न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 146 के अधीन विनिश्चय का कोई भी पक्ष स्वत्व की घोषणा के लिए परिसीमा की अवधि के अंतर्गत या भूमि से उद्भूत लाभों की वसूली के लिए वाद फाइल कर सकता है । ऐसे वाद में यह प्रश्न निर्णीत किया जाएगा कि भूमि से उद्भूत लाभों का हकदार कौन है, जिसके परिणामस्वरूप स्वत्व के प्रश्न का भी न्यायनिर्णयन हो जाएगा । यह आदेश धारा 146 के प्रयोजनार्थ पूर्व आदेश (Res-judicata) की भांति क्रियान्वित होगा । ये मताभिव्यक्तियां मद्रास उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा इस निर्णयज विधि के समर्थन में की गई थीं कि ऐसा नहीं है कि पक्षों को कोई अनुतोष उपलब्ध नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप संपत्ति सदैव के लिए विधि अभिरक्षा (Custodia Legis) के अंतर्गत रहेगी । कोई भी पक्ष परिसीमा के भीतर भूमि से उद्भूत लाभों की वसूली के लिए वाद फाइल करने का हकदार था, जिसमें स्वत्व के प्रश्न का न्यायनिर्णयन होना था । यह विनिश्चय निर्मोही अखाड़ा की सहायता नहीं करता । निर्मोही अखाड़ा द्वारा कतिपय विनिश्चयों का अवलंब लिया गया है, किंतु वे विनिश्चय निष्पादन द्वारा डिक्री के प्रवर्तन के प्रयोजनार्थ परिसीमा के आरंभ के संदर्भ में हैं । **चंडी प्रसाद** बनाम **जगदीश प्रसाद**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि कानून के अंतर्गत कोई अपील समस्त प्रयोजनों और उद्देश्यों के लिए वाद का विस्तार होती है । इसलिए, जब कोई उच्चतर फोरम अपील पर विचार करता है और गुणागुण पर कोई आदेश पारित करता है, तो विलय का सिद्धांत लागू हो जाता है और विचारण न्यायालय की डिक्री का विलय अपील न्यायालय के आदेश के साथ हो जाता है । इसलिए, यदि एक बार निष्पादन के प्रयोजनार्थ किसी डिक्री, वह डिक्री मूल वाद में पारित की गई हो या अपील में, के प्रवर्तन की ईप्सा की जाती है, तो डिक्री की तारीख या कोई पश्चात्वर्ती आदेश, जिसके द्वारा किसी कतिपय तारीख तक धन के संदाय या संपत्ति के कब्जे के लिए निर्देशित किया गया हो, को परिसीमा का आरंभ माना जाएगा । इसी सिद्धांत पर

---

[1] (2004) 8 एस. सी. सी. 724.

भारत संघ बनाम **वेस्ट कॉस्ट पेपर मिल्स लिमिटेड**[1] और **शांति** बनाम **टी. डी. विश्वनाथन**[2] वाले मामलों में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा जोर दिया गया । आवश्यक विवाद्यक यह है कि क्या उनका वाद परिसीमा के भीतर था और उन कारणोंवश, जिनको उपदर्शित किया गया हो, उत्तर नकारात्मक में होना चाहिए ।

ड.5 निर्मोही अखाड़ा के साक्षियों का मौखिक साक्ष्य

270. यह अभिनिर्धारित करते हुए कि निर्मोही अखाड़ा द्वारा संस्थित कराया गया वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित है, इस न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं हो जाता कि साक्ष्य, मौखिक या दस्तावेजी, पर विचार किया जाए । श्री पारासरन ने दलील दी कि विचारण न्यायालय की भांति इस न्यायालय से भी उन सभी प्रश्नों का उत्तर देने की अपेक्षा नहीं की जा सकती, जो प्रथम अपील में उद्भूत हुए और यदि विवाद्यक परिसीमा के आधार पर ही निर्णीत हो जाता है, तो मुकदमेबाजी के समस्त विवाद्यकों पर विचार किया जाना अनावश्यक होगा । यह दलील दी गई थी कि विचारण न्यायालय को समस्त विवाद्यकों पर विचार करना चाहिए, चूंकि उसके द्वारा पारित किया गया विनिश्चय अपील के अध्यधीन होता है । इस निवेदन का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करते हुए यह उचित होगा कि निर्मोही अखाड़ा द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की संवीक्षा की जाए और विवाद की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए मामले का पूर्ण रूप से न्यायनिर्णयन किया जाए । अपीलों की सुनवाई के दौरान समस्त वादों में अभिलिखित साक्ष्य का अवलंब लिया गया । निर्मोही अखाड़ा ने सुनवाई के अनुक्रम के दौरान निम्नलिखित साक्षियों के मौखिक साक्ष्य का अवलंब लिया ।

271. महंत भास्कर दास (प्रतिवादी साक्षी 3/1) इस साक्षी की मुख्य परीक्षा तारीख 29 अगस्त, 2003 को की गई । शपथपूर्वक साक्ष्य की तारीख पर उसकी आयु 75 वर्ष थी और उसका दावा था कि वह बाबा बलदेव दास का शिष्य है । वह श्रीपंच रामानंदीय निर्मोही अखाड़ा का

---

[1] (2004) 2 एस. सी. सी. 747.

[2] 2018 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 2196.

सरपंच था और उसका दावा है कि उसके पूर्व वह राम जन्मभूमि मंदिर का पंच और पुजारी था । इस साक्षी ने अभिकथित किया कि :–

(i) निर्मोही अखाड़ा राम जन्मभूमि पर स्थित मूर्तियों, विवादित मंदिर और सैकड़ों वर्षों से आस-पास के क्षेत्र में स्थित अन्य मंदिरों का स्वामी है;

(ii) राम जन्मभूमि मंदिर में स्थित भगवान राम और राम चबूतरा का अभिषेक निर्मोही अखाड़ा के महंत द्वारा किया गया था;

(iii) यह सूचना शिष्यों तक उनके पुराने गुरुओं द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी पहुंचाई गई;

(iv) वह वर्ष 1946-49 से राम चबूतरा मंदिर में पूजन और आरती का कार्य कर रहा था;

(v) भीतरी और बाहरी दोनों बरामदे सदैव निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में रहे हैं और भीतरी भाग में पवित्र स्थान स्थित था जिसका एक भाग निर्मित कराया गया था;

(vi) संपूर्ण बाहरी भाग प्राचीनकाल से निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में था;

(vii) तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि के दौरान, जब वह विवादित ढांचे के उत्तरी गुंबद के नीचे सो रहा था, कोई घटना घटित नहीं हुई;

(viii) भगवान राम की आरती और पूजन पवित्र स्थान पर तारीख 29 दिसंबर, 1949 के पहले से संचालित किया जा रहा था और भीतरी मंदिर तारीख 19 दिसंबर, 1949 को कुर्क कर दिया गया था;

(ix) वर्ष 1934 के दंगों के पश्चात् कोई भी मुस्लिम विवादित स्थल पर नमाज अदा करने के लिए नहीं गया;

(x) तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को राम चबूतरा मंदिर से कोई मूर्ति नहीं ले जाई गई थी और निर्मोही अखाड़ा सदैव विवादित मंदिर के कब्जा में था;

(xi) मुख्य मंदिर के संबंध में सेवादारी के अधिकार तारीख 29 दिसंबर, 1949 तक निर्मोही अखाड़ा के पास थे । निर्मोही अखाड़ा भगवान राम और अन्य मूर्तियों के पूजन का निर्वहन बाहरी परिसर में फरवरी, 1982 में द्वितीय कुर्की तक कर रहा था; और

(xii) भगवान राम वर्ष 1934 के पूर्व भी भीतरी भाग में विराजमान थे, जो तब तक निरंतर रूप से निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में था ।

सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल डा. धवन ने साक्षियों के साक्ष्य में निम्नलिखित विरोधाभासों के बारे में बताया :–

(i) जबकि साक्षी ने अभिकथित किया है कि तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को कोई घटना घटित नहीं हुई थी और वह उस रात्रि विवादित ढांचे के उत्तरी गुंबद के नीचे सो रहा था और उच्च न्यायालय ने निर्मोही अखाड़ा के काउंसेल का कथन इस बाबत अभिलिखित किया है कि मूर्तियों को राम चबूतरा से स्थानांतरित कर दिया गया था और विवादित भवन के केंद्रीय गुंबद के नीचे रख दिया गया था; और

(ii) साक्षी ने आरंभिकतः अभिकथित किया कि विवादित भवन में रामलला की दो मूर्तियां विराजमान थीं; एक मूर्ति सिंहासन पर और दूसरी सीढ़ियों पर, किंतु उसने बाद में स्पष्ट किया कि दो मूर्तियों से उसका आशय यह है कि एक मूर्ति रामलला की थी और दूसरी लक्ष्मण की । इसके अतिरिक्त इस साक्षी का यह दावा है कि उसने स्वयं तारीख 29 दिसंबर, 1949 को कुर्की के पूर्व विवादित स्थल के भीतर भगवान राम की आरती की थी, किंतु वह इन सभी बातों के बावजूद विवादित ढांचे के भीतर मूर्तियों की संख्या के संबंध में कोई कथन करने की स्थिति में नहीं थी । इसके अतिरिक्त दूसरी तरफ इस साक्षी ने यह अभिकथित किया है कि परिक्रमा विवादित ढांचे के पृष्ठ भाग की तरफ की जाती थी और बाद में उसने अभिकथित किया कि परिक्रमा राम चबूतरे के चारों तरफ की जा रही थी ।

272. कतिपय अन्य पहलुओं पर भी इस साक्षी के परिसाक्ष्य की गुणागुण पर संवीक्षा की जानी चाहिए । इस साक्षी ने अभिकथित किया कि बाबरी मस्जिद का निर्माण वर्ष 1528 में राम जन्मभूमि मंदिर को ध्वस्त किए जाने के पश्चात् कराया गया था । तत्पश्चात् उसने अभिकथित किया कि :–

> "चूंकि विक्रमादित्य द्वारा निर्मित कराए गए भवन पच्चीस सौ वर्ष पुराने थे, इसलिए वे स्वयं ही ढह गए थे और जन्मभूमि मंदिर को वर्ष 1528 में ध्वस्त कर दिया गया था । वह भवन जिसको वर्ष 1528 में ध्वस्त किया गया था, मूल रूप से विक्रमादित्य द्वारा निर्मित था ।"

इस साक्षी ने अभिकथित किया कि उसने विक्रमादित्य द्वारा राम जन्मभूमि मंदिर के भवन और वर्ष 1528 में मंदिर के ध्वंस होने के पश्चात् विवादित ढांचे के निर्माण के बारे में कहीं पर भी नहीं पढ़ा था, बल्कि अपने पूर्वजों से सुना था । इस साक्षी के अनुसार मस्जिद में हिंदुओं द्वारा पूजन वर्ष 1934 के पूर्व निरंतर रूप से जारी था । उसके अनुसार मूर्तियों को वर्ष 1934 के पूर्व स्थापित किया गया था, किंतु वह इस बाबत अनभिज्ञ था कि उन मूर्तियों को प्रतिष्ठापित किसने किया । तत्पश्चात् इस साक्षी ने अभिकथित किया :–

> "मैंने अपने पूर्वजों से सुना था कि वहां पर मूर्तियां वर्ष 1934 के पहले से विद्यमान थीं । मैं यह कहने में भी असमर्थ हूं कि मूर्तियों को तीन गुंबदों वाले विवादित ढांचे के निर्माण के कितने वर्ष पूर्व अर्थात् वर्ष 1528 के पश्चात् विवादित ढांचे में स्थापित किया गया ।"

साक्षियों के अनुसार वर्ष 1946 में ईंटों की दीवार, जिसके ऊपर लोहे की जाली लगाई गई थी, के द्वारों को श्रद्धालुओं के लिए खोल दिया गया था और तब से मंदिर खुला रहता था । उसने अभिकथित किया कि विवादित ढांचे में दिसंबर, 1949 तक नमाज अदा नहीं की जाती थी । जहां तक तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की घटना का संबंध है, इस साक्षी ने निम्नलिखित स्पष्टीकरण दिया :–

"तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि में विवादित ढांचे में कोई घटना घटित नहीं हुई । यदि किसी का यह दावा है कि तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि में विवादित ढांचे में कुछ घटनाएं घटित हुई थीं, तो वह झूठ बोल रहा है । मैं तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि को विवादित परिसर में उपस्थित था । मैं रात्रि 11.30 बजे विश्राम के लिए चला गया और प्रात: 4.30 बजे मेरी नींद खुली । मैं उस रात्रि अर्थात् तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि को इसी प्रकार से सोया था । उस समय अर्थात् उस रात्रि को मैं गुंबद के निकट वाले स्थान पर सोया था ।"

वह अनभिज्ञता स्पष्ट है, जो साक्षी द्वारा घटना के प्रति दर्शित की गई । इस साक्षी का परिसाक्ष्य महत्वपूर्ण है क्योंकि वह वर्ष 1950 से निर्मोही अखाड़ा का पंच था और तात्विक समयबिंदु पर सरपंच था । उसके साक्ष्य में अनेक विरोधाभास मौजूद हैं । उसने अभिकथित किया है कि :–

"यह सिंहासन विवादित ढांचे में वर्ष 1950 के दस वर्ष पहले से विद्यमान था । यह सिंहासन वर्ष 1950 में विवादित ढांचे में मौजूद था, किंतु इसको कुर्क नहीं किया गया था ।"

इसके विपरीत इस साक्षी ने अभिकथित किया :–

"सिंहासन वर्ष 1986 के पूर्व तीन फोटोग्राफ में दृश्यमान है, किंतु यह सिंहासन विवादित स्थल पर विद्यमान नहीं था । यह संभव है कि इस सिंहासन को विवादित भवन में वर्ष 1986 में उसका ताला खुलने के पश्चात् स्थापित कर दिया गया हो ।"

तत्पश्चात् इस साक्षी ने स्वीकार किया कि उसने भगवान राम की दो मूर्तियों को निर्दिष्ट किया था जबकि वहां पर भगवान राम की केवल एक मूर्ति थी और दूसरी लक्ष्मण की थी । जहां तक रामचंद्र की मूर्तियों का संबंध है, इस साक्षी ने यह अभिकथित किया कि उन मूर्तियों को अकबर के राज के दौरान स्थापित किया गया था । जबकि इसके विपरीत इस साक्षी ने यह अभिकथित किया कि इस मस्जिद में बाबर के

समय से नमाज कभी भी अदा नहीं की गई और इसके विपरीत जब उसने विवादित ढांचे में रामलला की मूर्ति के बारे में शपथपूर्वक कथन किया, तो उसने अभिकथित किया कि वह मूर्ति वहां पर वर्ष 1934 के पूर्व से विद्यमान थी, किंतु उसको सटीक तारीख और अवधि ज्ञात नहीं थी । इस साक्षी के अनुसार रामलला की मूर्ति, जो सिंहासन पर बैठी हुई थी, चल-विग्रह अर्थात् स्थानांतरणीय मूर्ति थी ।

इस साक्षी का अधिकांश साक्ष्य अनुश्रुत साक्ष्य की प्रकृति का है । उसके कथन उन कथनों पर आधारित हैं, जो उसको दूसरों द्वारा संसूचित किए गए । इस साक्षी का स्पष्टीकरण यह है कि वह तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को विवादित परिसर में सो रहा था और उसकी जानकारी में कोई घटना घटित नहीं हुई । उसका यह कथन कि विवादित ढांचे में रामलला की मूर्तियों को वर्ष 1934 के अत्यधिक पूर्व स्थापित कर दिया गया था, विश्वसनीय नहीं है ।

273. **राजाराम मोहन पांडे** (प्रतिवादी साक्षी 3/2) – इस साक्षी के मुख्य परीक्षण की तारीख 22 सितंबर, 2003 है । इस साक्षी ने अभिकथित किया कि वह शपथपूर्वक कथन के समय 87 वर्ष की आयु का था और वह अयोध्या वर्ष 1930 में आया था और उसका दावा है कि वह तब से राम जन्मभूमि मंदिर के दर्शन करता रहा है । इस साक्षी ने अभिकथित किया कि :–

(i) उसने भीतरी बरामदे की कुर्की के पूर्व निर्मोही अखाड़ा की आरती देखी है;

(ii) निर्मोही अखाड़ा द्वारा बाहरी बरामदे के द्वारों को खोले जाने और बंद किए जाने के कर्तव्य का निर्वहन किया जाता था;

(iii) किसी भी मुस्लिम को 1930-1949 के मध्य बाहरी द्वार से प्रवेश की अनुज्ञा नहीं थी और वह पवित्र स्थान के भीतरी भाग, जहां कुछ मूर्तियों को उत्कीर्णित किया गया था, का दृश्यावलोकन करता था; और

(iv) इस परिसर को उसके आगमन की तारीख से कुर्की की तारीख तक कभी भी मस्जिद के रूप में प्रयोग नहीं किया गया ।

डा. धवन ने निवेदनों के दौरान प्रतिपरीक्षण के निम्नलिखित पहलुओं पर जोर दिया :–

(i) साक्षी ने स्वीकार किया है कि पहले चबूतरे को ही जन्मभूमि मंदिर के नाम से जाना जाता था;

(ii) साक्षी को इस बात की जानकारी थी कि तीन गुंबदों वाले विवादित ढांचे का निर्माण कब किया गया था और उसका निर्माण किसने कराया था; उसको इस बाबत जानकारी नहीं थी कि विवादित ढांचे के भीतर मूर्तियों को कब और किसने स्थापित किया; और

(iii) साक्षी को इस बात की जानकारी नहीं थी कि निर्मोही अखाड़े को कब और किसके द्वारा राम जन्मभूमि मंदिर का स्वामी बनाया गया ।

साक्षी ने अपने परीक्षण के दौरान अभिकथित किया कि वह बाबरी मस्जिद के बारे में वर्ष 1949 से सुनता आया है किंतु उसको इस बात की जानकारी नहीं थी कि यह स्थान अयोध्या में कहां पर स्थित था या है । उसने अभिकथित किया कि उसको बाद में प्रतिपरीक्षा से यह ज्ञात हुआ कि वह भवन जिसको वह राम जन्मभूमि कहता था, को ही मुस्लिमों द्वारा बाबरी मस्जिद कहा जाता है । यद्यपि उसने अभिकथित किया कि उसने वर्ष 1992-93 में मुस्लिमों के साथ बैठकें आयोजित की थीं, किंतु साथ ही उसने यह भी अभिकथित किया कि उसको किसी भी मुस्लिम द्वारा इस बाबत सूचित नहीं किया गया कि मस्जिद को तारीख 6 दिसंबर, 1992 को ध्वस्त किया जा चुका है । साक्षी ने अपनी घटनाओं को याद करने की क्षमता के आधार पर यह अभिकथित किया :–

"मैं 87 वर्ष का हो गया हूं और अब मेरा विवेक सही दिशा में कार्य नहीं करता । इसी कारणवश मैं इस बात को याद नहीं कर सकता कि मैंने किसी विशिष्ट समयबिंदु पर कौन सी विशिष्ट बात कही । पूर्वोक्त कथनों में से मेरे द्वारा आज किया गया ऊपर वर्णित कथन सही है; मैंने तारीख 30 सितंबर, 2003 को जो कथन किया था, वह गलत है ।"

इस साक्षी ने शपथपूर्वक कथन किया कि उसको इस बाबत कोई जानकारी नहीं है कि तीन गुंबदों वाले विवादित ढांचे में मूर्तियां किसने स्थापित की थीं, किंतु उसने दावा किया कि वह जब से वहां पर जा रहा है, तब से इन मूर्तियों को देख रहा है । जबकि एक तरफ इस साक्षी ने अपनी स्मरणशक्ति के कमजोर होने की बात को स्वीकार किया है, वहीं दूसरी तरफ उसने इस बाबत शपथपूर्वक कथन किया है कि 73 वर्ष पूर्व वर्ष 1930 में जब उसने विवादित ढांचे में दर्शन किए थे, तब क्या घटना घटित हुई थी । उसके अनुसार उसके पिता ने उसको बताया था कि खंभों में भगवान हनुमान जी के चित्र समाविष्ट थे ।

274. **सत्यनारायण त्रिपाठी** (प्रतिवादी साक्षी 3/3) – इस साक्षी की मुख्य परीक्षा तारीख 30 अक्तूबर, 2003 को हुई थी जब उसकी आयु 72 वर्ष थी । इस साक्षी ने अभिकथित किया था कि उसने सर्वप्रथम राम जन्मभूमि मंदिर के दर्शन वर्ष 1941 में किए थे, जब उसकी आयु 10 वर्ष थी और वह तब से निरंतर रूप से मंदिर के दर्शन करता रहा है । इस साक्षी ने अभिकथित किया कि विवादित स्थल पर न तो कभी कोई नमाज अदा की गई और न ही किसी मुस्लिम ने वहां पर कोई प्रार्थना की । यद्यपि इस साक्षी ने अभिकथित किया है कि वह निरंतर रूप से विवादित ढांचे में दर्शन करता रहा है किंतु जब उससे इस ढांचे के भौतिक लक्षणों के बारे में पूछा गया, तो उसने अभिकथित किया कि उसने कभी भी विवादित ढांचे के किसी भाग को अत्यधिक ध्यानपूर्वक नहीं देखा ।

इस साक्षी ने इस बाबत अनभिज्ञता व्यक्त की कि कुछ व्यक्ति तारीख 23 दिसंबर, 1949 की रात्रि को मस्जिद में प्रविष्ट हुए थे और उन्होंने मूर्तियां स्थापित कर दी थीं । उच्च न्यायालय ने इस बात का उल्लेख किया है कि इस साक्षी के अधिकांश कथन उपधारणा और अनुश्रुति पर आधारित हैं । जबकि एक तरफ उसने उन मूर्तियों को निर्दिष्ट किया है, जिनको विवादित ढांचे में सिंहासन पर स्थापित किया गया था और जो वहां पर 1941-1992 तक स्थापित रहीं, वहीं दूसरी तरफ उसने बाद में इस कथन की पुष्टि नहीं की, जब उसको फोटोग्राफ दिखाए गए और उसने अभिकथित किया कि उसको यह बात स्पष्ट नहीं

है कि वह विवादित ढांचे में कब जाता था और मूर्तियों को किस प्रकार से रखा गया था ।

275. **महंत शिवशरण दास** (प्रतिवादी साक्षी 3/4) – इस साक्षी का परीक्षण तारीख 14 नवंबर, 2003 को किया गया था । उस समय उसकी आयु 83 वर्ष थी । उसने अभिकथित किया कि वह श्रीराम जन्मभूमि के दर्शन के लिए वर्ष 1933 से जाता रहा है और उसने वर्ष 1949 में कुर्की होने तक पवित्र स्थान के भीतर भगवान राम का दर्शन करता रहा है ।

सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की तरफ से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल डा. धवन ने इस साक्षी के परिसाक्ष्य के निम्नलिखित पहलुओं पर जोर दिया :–

(i) इस साक्षी ने निवेदन किया कि उसने साक्ष्य के अपने शपथपत्र को मात्र सरसरी में पढ़ा था और उसने इस शपथपत्र को पूर्णतया नहीं पढ़ा था;

(ii) यद्यपि, इस साक्षी ने अभिकथित किया है कि जब उसने वर्ष 1936 में विवादित स्थल पर दर्शन किए थे, तब वहां कोई दीवार या लोहे की छड़ें इत्यादि नहीं थीं, अत: इस बात का उल्लेख किया जाना सुसंगत होगा कि ईंट की दीवार और उसके ऊपर लगी हुई लोहे की जाली वर्ष 1856-57 में भीतरी और बाहरी बरामदों को पृथक् करने के प्रयोजनार्थ लगाई गई थी; और

(iii) यद्यपि, इस साक्षी ने मुख्य परीक्षा के दौरान अभिकथित किया है कि उसने भीतरी पवित्र स्थान के दर्शन वर्ष 1949 में किए थे, किंतु उसने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह अभिकथित किया कि उसने वर्ष 1986 के पूर्व विवादित भवन के दर्शन नहीं किए थे । उपरोक्त आधार पर यह दलील दी गई कि इस साक्षी ने वस्तुत: किसी भी तात्विक समयबिंदु पर विवादित स्थल के दर्शन नहीं किए ।

इस साक्षी ने अयोध्या में अपने निवास के बाबत अभिकथित किया :–

"मैं वर्ष 1938 से 1950 तक अयोध्या में निवास नहीं करता

था, किंतु जब कभी भी मैं अयोध्या आता था, मैं विवादित स्थल की तरफ नहीं जाता था और यदि मैं उस तरफ जाता भी था, तो उस स्थान के हाथ जोड़कर बाहर से ही वापस लौट आता था ।"

इस साक्षी ने अभिकथित किया कि वह विवादित ढांचे का पुजारी था और उसने विवादित ढांचे में सैकड़ों बार दर्शन किए । तथापि, उसको वह वर्ष याद नहीं, जिसमें वह पुजारी था । इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा के दौरान अभिकथित किया कि वह तीन गुंबदों वाले ढांचे का '2-4 वर्षों' तक पुजारी था, किंतु बाद में उसने स्वीकार किया कि उसका कथन गलत था :–

"**प्रश्न** : आप अपने स्वयं के पूर्वोक्त कथन के अनुसार वर्ष 1931 से 1957 के मध्य केवल 5-6 माह की निरंतर अवधि के लिए अयोध्या में मौजूद थे, क्या यह सत्य है ?

उत्तर : हां श्रीमान्, यह सत्य है ।

प्रश्न : तत्पश्चात् मेरा यह कहना है कि आपका तारीख 5 फरवरी, 2004 का कथन – जिसका उल्लेख पृष्ठ 74 पर किया गया है और जो इस प्रकार है, 'आप तीन गुंबदों वाले विवादित भवन पर 2-4 वर्षों के लिए पुजारी के रूप में कार्यरत थे' – गलत है । आपका इस संबंध में क्या कहना है ?

उत्तर : उपरोक्त प्रश्न का परिशीलन करने के पश्चात् साक्षी ने उत्तर दिया – मेरा यह कथन गलत है ।"

तत्पश्चात्, उसने स्वीकार किया कि मुख्य परीक्षा में उसका यह कथन कि वह राम जन्मभूमि पर वर्ष 1933 से दर्शन के लिए जाता रहा था, में संदर्भित वर्ष गलत है । इसके अतिरिक्त, इस साक्षी ने स्वीकार किया कि उसको यह बात याद नहीं कि उसने फरवरी, 1986 के पूर्व विवादित भवन के दर्शन किए थे या नहीं । इस साक्षी ने यह भी अभिकथित किया कि उसने वर्ष 1930 से 1942 तक निरंतर रूप से अयोध्या में निवास का गलत उल्लेख किया है ।

276. **रघुनाथ प्रसाद पांडे** (प्रतिवादी साक्षी 3/5) – इस साक्षी की

मुख्य परीक्षा तारीख 18 नवंबर, 2003 को हुई थी । जब इस साक्षी ने शपथपूर्वक कथन किया, तब उसकी आयु 73 वर्ष थी । उसके अनुसार राम जन्मभूमि मंदिर उसके गांव से 16 या 17 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है और वह इस मंदिर का दर्शन 7 वर्ष की आयु से कर रहा है ।

277. डा. धवन प्रतिपरीक्षा के निम्नलिखित पहलुओं पर जोर दिया :–

(i) इस साक्षी को इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि जो चित्र उसको दिखाए गए हैं, वे विवादित भवन की पश्चिमी दीवार के हैं या बीच वाले गुंबद के नीचे वाले भाग के, क्योंकि वह दर्शन करने के लिए गया था और उसने दीवारों को सावधानीपूर्वक नहीं देखा था;

(ii) यद्यपि उसने ईंट की दीवार और उस पर लगी लोहे की जाली को देखा था, फिर भी उसको यह याद नहीं कि लोगों को विवादित ढांचे में प्रवेश के लिए बाड़ के बीच से निकल कर जाना पड़ता था; और

(iii) यद्यपि साक्षी ने यह दावा किया है कि उसने अपनी माता के साथ वर्ष 1937-1948 के दौरान अयोध्या के दर्शन किए थे और भगवान रामलला की मूर्तियां केंद्रीय गुंबद के नीचे वाले भवन के भीतर स्थापित थीं, किंतु जब उसको विभिन्न फोटोग्राफ दिखाए गए, तब उसने बाद में अपने स्वयं के ही कथन का खंडन किया ।

उच्च न्यायालय ने इस बात का उल्लेख किया है कि उसके कथनों में से अधिकांश कथन पुराने हैं और ग्रहण किए जाने योग्य नहीं हैं क्योंकि उसको तथ्यों की व्यक्तिगत जानकारी नहीं है । जब उससे इस ज्ञान के स्रोत के बारे में प्रश्न किए गए, तो उसने अभिकथित किया कि उसने इन कहानियों के बारे में अपने शिक्षकों से सुना था । आरंभिकतः, इस साक्षी ने अभिकथित किया कि तीन गुंबदों वाले ढांचे का निर्माण विक्रमादित्य द्वारा कराया गया था । तत्पश्चात् उसने अभिकथित किया कि विक्रमादित्य द्वारा निर्मित भवन ढहा दिया गया था और विवादित

भवन का निर्माण कराया गया था । यद्यपि उसने इस सूचना का श्रेय अयोध्या महात्म्य को दिया, किंतु निर्मोही अखाड़ा के काउंसेल ने उच्च न्यायालय के समक्ष स्वीकार किया कि दस्तावेजों में इस बात का उल्लेख नहीं है कि भवन का निर्माण विक्रमादित्य द्वारा कराया गया था और बाद में उसको ध्वस्त करा दिया गया था, जिसके पश्चात् विवादित ढांचे का निर्माण कराया गया । यद्यपि इस साक्षी ने भारतीय रेलवे में वर्ष 1948 से 1988 तक सेवा की है, किंतु उसका दावा है कि उसने बाबरी मस्जिद का नाम प्रथम बार तारीख 18 नवंबर, 2003 को सुना ।

278. **श्री सीता राम यादव** (प्रतिवादी साक्षी 3/6) – इस साक्षी की मुख्य परीक्षा की तारीख 6 जनवरी, 2004 है । इस साक्षी ने अभिकथित किया है कि उसका जन्म वर्ष 1943 में हुआ था और उसने वर्ष 1951 में, जब उसकी आयु 8 वर्ष थी, समझदारी की आयु प्राप्त कर ली थी । अतः, इस साक्षी के कथन इस विवाद के संबंध में सुसंगत नहीं थे क्योंकि उसका तथ्यात्मक ज्ञान 1951 के पश्चात् की अवधि से संबंधित है । इस साक्षी का जन्म वर्ष 1943 में हुआ था और उसको दिसंबर, 1949 तक के तथ्यों की व्यक्तिगत रूप से कोई जानकारी नहीं थी । इस साक्षी का साक्ष्य अनुश्रुत प्रकृति का था ।

279. **महंत रामजी दास** (प्रतिवादी साक्षी 3/7) – डा. धवन द्वारा इस साक्षी के परिसाक्ष्य के निम्नलिखित पहलुओं पर जोर दिया गया :–

(i) इस साक्षी ने स्वीकार किया है कि विवादित भवन का निर्माण सम्राट बाबर द्वारा किया गया था किंतु साथ ही उसने यह भी अभिकथित किया कि इसका निर्माण सीता पाक के रूप में किया गया था और न कि एक मस्जिद के रूप में, जो निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किए गए उनके लिखित कथन में किए गए पक्षकथन के विपरीत है;

(ii) इस साक्षी के अनुसार विवादित मंदिर सम्राट बाबर द्वारा गूदर बाबा (जो हिंदू पक्षों में से किसी पक्ष द्वारा उनके अभिवचनों में किया गया पक्षकथन नहीं है) के माध्यम से जन्मस्थान मंदिर को ध्वस्त किए जाने के पश्चात् किया गया था; और शपथपूर्वक कथन के समय उसकी आयु 90 वर्ष थी ।

(iii) बाबर ने विवादित भवन पर सीता पाक लिखवाया था क्योंकि वह मस्जिद का निर्माण करा पाने में असमर्थ था क्योंकि जब भी मंदिर के निर्माण का प्रयास किया जाता था हनुमान जी उसको गिरा देते थे ।

गवाह ने अपनी निजी जानकारी के आधार पर अभिकथित किया :-

"मैं निश्चित रूप से नहीं बता सकता कि वर्ष 1934 से 1948 के मध्य में कितनी बार अयोध्या गया था । मुझे स्मरण नहीं है कि वर्ष 1934 से वर्ष 1948 के मध्य, जब मैं अयोध्या जाता था, तब मेरी उम्र क्या थी । मैं अपने पिता के साथ जाता था । मुझे स्मरण नहीं है कि वर्ष 1934 के पश्चात् मैं पहली बार अयोध्या कब गया था, लेकिन जब मैं वर्ष 1934 के पश्चात् पहली बार अयोध्या गया था, तब मैं 3-4 दिन रुका था ।"

उन्होंने निर्मोही अखाड़े के पक्षकथन के विपरीत अभिकथित किया कि विवादित ढांचे का निर्माण बाबर ने कराया था, यद्यपि वह सीता पाक के आकार में था :–

"विवादित ढांचा, जिसे तारीख 6 दिसम्बर, 1992 को ध्वस्त कर दिया गया था, का निर्माण बाबर द्वारा 'सीता पाक' के आकार में कराया गया था .... । अकबर के काल में विवादित ढांचे में मुस्लिमों को जुमे की नमाज अदा करने की अनुमति थी और शेष अवधि के लिए हिंदुओं को पूजा-अर्चना करने की अनुमति थी । साहित्य या इतिहास में यह नहीं मिलता है कि बाबर से अकबर के मध्य के काल में विवादित ढांचे में मुसलमानों द्वारा नमाज अदा की गई थी या नहीं या भगवान राम की पूजा-अर्चना की गई थी या नहीं । जहां तक मेरी जानकारी का प्रश्न है और जैसा कि मुझे बताया गया है, वर्ष 1934 के दंगों के पश्चात् विवादित ढांचे में कभी नमाज अदा नहीं की गई और इसके बजाय पश्चात्वर्ती के दिनों में वहां पर नियमित रूप से पूजा-अर्चना की जाती रही । जहां तक मेरी जानकारी का प्रश्न है, जो सुनी-सुनाई बातों पर आधारित है, अकबर के काल से वर्ष 1934 तक विवादित ढांचे में जुमे की

नमाज अदा की जाती थी । अन्य दिनों में नमाज अदा नहीं की जाती थी ।"

अंततः, गवाह ने कहा कि उसने मुख्य परीक्षा के रूप में फाइल किए गए अपने शपथपत्र को हस्ताक्षर करते समय नहीं पढ़ा था और उसने यह शपथपत्र अदालत कक्ष में पढ़ा ।

280. **पंडित श्याम सुंदर मिश्रा** (प्रतिवादी साक्षी 3/8) – उनका जन्म वर्ष 1914 में हुआ था और उन्होंने अभिकथित किया कि रामजन्म भूमि उनके घर से 400 गज से भी कम की दूरी पर स्थित है । जब उन्होंने शपथपूर्वक कथन किए तो उनकी आयु 90 वर्ष थी ।

281. डा. धवन द्वारा इस साक्षी के परिसाक्ष्य के निम्नलिखित पहलुओं पर जोर दिया गया :–

(i) इस साक्षी का यह कथन कि केंद्रीय गुंबद स्वयं-भू है, निर्मोही अखाड़े द्वारा उनके अभिवचनों में किए गए पक्षकथन के विपरीत है;

(ii) इस साक्षी के अनुसार वर्ष 1992 में जन्मस्थान मंदिर का गुंबद प्राचीन होने और उचित रखरखाव की कमी के कारण ढह गया था; और

(iii) ऐसा प्रतीत होता है कि इस साक्षी ने शपथपूर्वक कथन के समय रामचबूतरा मंदिर और 'तीन गुंबद वाले मंदिर' के मध्य विभेद किया था और यह अभिकथन किया था कि रामचबूतरा मंदिर निर्मोही अखाड़े के स्वामित्वाधीन था और वह 'तीन गुंबद वाले मंदिर' के प्रबंधन और स्वामित्व के बारे में मौन रहा ।

इस साक्षी ने अभिकथित किया है कि उसको 14 वर्ष की आयु प्राप्त करने के पूर्व विवादित स्थल पर उपासना किए जाने या न किए जाने के बाबत जानकारी नहीं थी ।

282. **श्रीराम आश्रय यादव** (प्रतिवादी साक्षी 3/9) – इस साक्षी की मुख्य परीक्षा तारीख 22 मार्च, 2004 को अभिलिखित की गई थी, जब उसकी आयु 72 वर्ष थी । उसका दावा है कि उसका निवास राम जन्मभूमि मंदिर के अति निकट स्थित था ।

283. डा. धवन ने निवेदन किया कि इस साक्षी को इस बात की बिल्कुल भी जानकारी नहीं है कि उसने अपनी मुख्य परीक्षा में क्या अभिकथन किए हैं और इसलिए उसकी मुख्य परीक्षा पर निम्नलिखित कारणोंवश बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए :–

(i) इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा के अनुक्रम में स्वीकार किया कि यद्यपि उसको इस बात की जानकारी नहीं थी कि उसने अपने शपथपत्र में क्या लिखा था, फिर भी वह यह स्मरण नहीं कर सकता कि उसके शपथपत्र में ठीक-ठीक क्या लिखा गया था, यद्यपि उसको यह शपथपत्र पढ़कर सुनाया गया था;

(ii) वे उत्तर जो उसने दिए हैं, सही या गलत हो सकते हैं और यह संभव है कि उसकी स्मरण शक्ति प्रभावित हो गई हो;

(iii) उसको इस बात की जानकारी नहीं थी कि मुख्य शपथपत्र फैज़ाबाद में टंकित किया गया था या लखनऊ में;

(iv) उसने तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 के पूर्व भी पवित्र स्थान के दर्शन किए थे और उसका यह कथन कि उन तारीखों पर कोई मूर्ति स्थापित की गई थी, असत्य है; और

(v) यह साक्षी इस बाबत अनभिज्ञ था कि 22/23 दिसंबर की तारीखें वर्ष 1949 की हैं या नहीं ।

यद्यपि, यह शपथपत्र मात्र 10 माह पूर्व तैयार किया गया था, किंतु साक्षी इस दस्तावेज में लिखी हुई किसी भी बात का स्मरण कर पाने में असमर्थ था । वह निर्मोही अखाड़े के इतिहास से भी अनभिज्ञ था और उसको इस बात की भी कोई जानकारी नहीं थी कि क्या विवादित धर्मस्थान को कुर्क कर लिया गया था । इस साक्षी ने अपनी मुख्य परीक्षा में अभिकथित किया है कि उसको इस शपथपत्र में समाविष्ट अंतर्वस्तु की जानकारी थी :–

"आज मैंने इस न्यायालय में शपथपत्र फाइल किया है । मैं स्वयं नहीं पढ़ सकता कि मेरे द्वारा फाइल किए गए इस शपथपत्र

में क्या लिखा है । मुझे यह शपथपत्र मुंशी (वकील के क्लर्क) द्वारा पढ़कर सुनाया गया था । मैंने शपथपत्र में लिखी गई बातों को सुनने के पश्चात् शपथपत्र पर हस्ताक्षर बना दिए थे, किंतु मुझे इसकी अंतर्वस्तु के बाबत जानकारी नहीं है । यह शपथपत्र तीन या चार पृष्ठों का है ।"

उसने बाद में अभिकथित किया कि उसका मस्तिष्क विगत 8 से 10 माह की अवधि से सुचारु रूप से कार्य नहीं कर रहा था और उसकी स्मरण शक्ति कमजोर हो गई थी । उसने अभिकथित किया :–

"मुझको स्मरण नहीं है कि मेरे द्वारा इस पैरा में उल्लिखित तथ्यों को सम्मिलित किया गया है या नहीं । ... मैंने इस पैरा की द्वितीय और तृतीय पंक्ति में उल्लेख किया है कि 'गर्भ-गृह' वाले भाग में तारीख 22/23 दिसंबर को मूर्तियों की स्थापना पूर्णतया गलत है । मुझको स्मरण नहीं कि यह तथ्य 1949 की घटना से संबंधित है या नहीं । मैंने इसी पैरा में यह उल्लेख भी किया है कि कुछ स्थानीय मुस्लिमों ने जाली दस्तावेज बना लिए थे । मुझे स्मरण नहीं कि किस संबंध में ऐसा किया गया, जाली दस्तावेज बनाए गए । फिर उसने स्वयं अभिकथित किया कि मैं इस बात को नहीं बता सकता कि क्या मेरे द्वारा उल्लिखित जाली कार्रवाई 1934 के वर्ष की घटना से संबंधित थी या नहीं ।"

284. **श्री पटेश्वरी दत्त पांडेय** (प्रतिवादी साक्षी 3/10) – इस साक्षी की मुख्य परीक्षा तारीख 23 मार्च, 2004 को अभिलिखित की गई थी । यह साक्षी, जिसकी आयु उस समय 74 वर्ष थी, ने अभिकथित किया कि वह उस समय स्थानीय आयुक्त था, जिसने एक अन्य मामले (**निर्मोही अखाड़ा** बनाम **राम लखन शरण दास** – 1973 का वाद संख्या 9) में स्थल का सर्वे संचालित किया था ।

डा. धवन ने इस साक्षी के परिसाक्ष्य के संबंध में निम्नलिखित बिंदुओं का उल्लेख किया :–

(i) यद्यपि उसकी रिपोर्ट विवादित स्थल पर मंदिर की विद्यमानता को चिह्नित करती है, किंतु उसने इस बात को

स्वीकार किया है कि उसने 'मंदिर' शब्द कतिपय अन्य लोगों द्वारा कहे जाने पर अंत:स्थापित किया है । उसको नहीं ज्ञात कि यह स्थान बाबरी मस्जिद था या अन्यथा और उसने अभिकथित किया है कि उसने वही लिखा जो उसको अन्य लोगों द्वारा सूचित किया गया; और

(ii) परिणामस्वरूप, इस साक्षी की रिपोर्ट का अवलंब इस बात की पुष्टि के प्रयोजनार्थ नहीं लिया जा सकता कि विवादित ढांचा मंदिर था, चूंकि उसने इस ढांचे को अन्य लोगों के सुझाव पर मंदिर के रूप में चिह्नित किया है;

इस साक्षी की स्वीकृतियां उसकी विश्वसनीयता पर गंभीर संदेह उत्पन्न करती हैं ।

285. **श्री भानु प्रताप सिंह** (प्रतिवादी साक्षी 3/11) – इस साक्षी की मुख्य परीक्षा तारीख 28 अप्रैल, 2004 को अभिलिखित की गई थी, जब उसकी आयु 70 वर्ष थी । उसने दावा किया है कि वह राम जन्मभूमि मंदिर के दर्शन तब से कर रहा था जब उसकी आयु 10 वर्ष थी । साक्षी ने अभिकथित किया कि उसकी स्मरण शक्ति कमजोर हो गई है । वह यह अभिकथित करने में असमर्थ था कि क्या राम जन्मभूमि मंदिर के अलावा कोई अन्य मंदिर निर्मोही अखाड़े से संबंधित है । जब उसके समक्ष उसकी मुख्य परीक्षा को रखा गया, तो उसने अभिकथित किया :–

"मेरे उपरोक्त कथन का 'चारों तरफ मंदिर' वाला भाग गलत है क्योंकि मंदिर केवल दो तरफ थे ...मैं इस बाबत गलत कथन करने का कोई कारण नहीं बता सकता । मैं कुछ तथ्यों को भूल गया हूं, जिस कारणवश मैंने कुछ कथन किए । मेरा भूल जाने से आशय यह है कि मैं उन तथ्यों का स्मरण उस समय नहीं कर पाया ।"

286. **श्रीराम अक्षयबीर पांडेय** (प्रतिवादी साक्षी 3/12) – इस साक्षी की मुख्य परीक्षा तारीख 25 मई, 2004 को अभिलिखित की गई थी । यह साक्षी, जिसकी आयु 70 वर्ष थी, ने अभिकथित किया कि वह राम

जन्मभूमि मंदिर के दर्शन तब से करता रहा है, जब उसकी आयु 12 वर्ष थी ।

इस साक्षी के परिसाक्ष्य के निम्नलिखित पहलू महत्वपूर्ण हैं :–

(i) इस साक्षी ने स्वीकार किया कि विवादित ढांचे के बारे में उसकी जो जानकारी है, वह उसको उसके दादा द्वारा प्रदान की गई थी;

(ii) यद्यपि इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान अभिकथित किया है कि वह परिक्रमा करता रहा है, किंतु उसने अभिकथित किया कि उसने विवादित ढांचे के पीछे से कभी भी तीन गुंबद नहीं देखे;

(iii) इस साक्षी ने अभिकथित किया कि उसने राम जन्मभूमि की परिक्रमा नहीं की थी, बल्कि राम चबूतरे की परिक्रमा की थी;

(iv) इस साक्षी के अनुसार, उसको ग्रामीणों द्वारा सूचित किया गया था कि राम जन्मभूमि, जिसमें रामलला विद्यमान हैं, ढह गया था, क्योंकि यह अत्यधिक प्राचीन था; और

(v) इस साक्षी ने अभिकथित किया कि उसने न तो कभी इस बाबत पढ़ा और न ही सुना कि तीन गुंबदों वाले विवादित ढांचे का निर्माण इसने किया था । इस साक्षी ने अंतत: अपनी स्मरणशक्ति की दुर्बलता को स्वीकार किया, जिसके कारण वह अविश्वसनीय हो गया है ।

287. **महंत राम सुभाग शास्त्री** (प्रतिवादी साक्षी 3/13) – इस साक्षी की मुख्य परीक्षा तारीख 25 मई, 2004 को अभिलिखित की गई थी । इस साक्षी की आयु 86 वर्ष थी और उसने यह अभिकथित किया कि वह अयोध्या वर्ष 1933 में आया था और उसके गुरु निर्मोही अखाड़े से संबद्ध थे । इस साक्षी के परिसाक्ष्य के निम्नलिखित पहलू सुसंगत हैं :–

(i) इस साक्षी ने स्वीकार किया कि तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि में विवादित ढांचे में कुछ उपद्रव हुआ था और यद्यपि उसको उन इंतजामों के बाबत जानकारी नहीं है, जो उस

रात्रि किए गए थे, फिर भी उसको ज्ञात हुआ था कि नई मूर्तियां स्थापित कर दी गईं थीं;

(ii) जहां तक मस्जिद के निर्माण का संबंध है, इस साक्षी ने अभिकथित किया :–

> “बाबर ने मंदिर के ढांचे को ध्वस्त करते हुए मस्जिद का निर्माण किया था, किंतु वह इस मस्जिद का निर्माण पूर्ण नहीं कर पाया था । इस ढांचे में 14 खंभे स्थिर किए गए थे, जिन पर मूर्तियां उत्कीर्णित थीं और इस प्रकार से यह एक ऐसा स्थान था जहां पर मूर्तियां उपस्थित थीं ।”

(iii) इस साक्षी ने अभिकथित किया कि संभवत: उसकी स्मरण शक्ति से 1933-34 के पश्चात् की अवधि से संबंधित तथ्य गायब हो गए हैं । इस साक्षी का यह कथन निर्मोही अखाड़े के पक्षकथन के विपरीत है कि विवादित ढांचे में मूर्तियां तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि में स्थापित की गई थीं । निर्मोही अखाड़े के अनुसार विवादित स्थल पर कभी कोई मस्जिद विद्यमान नहीं थी और वहां पर केवल एक मंदिर था, जो उनके प्रबंधन के अधीन था और तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को कोई घटना घटित नहीं हुई थी ।

288. **जगद्गुरु रामानंदाचार्य स्वामी हर्याचार्य** (प्रतिवादी साक्षी 3/14) – इस साक्षी की मुख्य परीक्षा तारीख 23 जुलाई, 2004 को अभिलिखित की गई थी, जब इस साक्षी की आयु 69 वर्ष थी । वह वर्ष 1985-86 से रामानंद संप्रदाय का प्रमुख था । वह अयोध्या वर्ष 1949 में आया था, तब उसकी आयु 10 वर्ष थी । उसके अनुसार उसने रामलला की मूर्ति विवादित ढांचे के भीतर केंद्रीय गुंबद के नीचे और साथ ही बाहर राम चबूतरा पर भी देखा था । इस साक्षी ने शपथपूर्वक कथन किया कि जब उसने प्रथमत: 15 फीट की दूरी से दर्शन किए थे, तब वह गुंबद के नीचे नहीं थी बल्कि बरामदे में थी । इस साक्षी को इस बाबत कोई जानकारी नहीं थी कि क्या अयोध्या में उसके आगमन के पूर्व नमाज विवादित ढांचे में अदा की जाती थी । साक्षी ने इस

संभाव्यता से इनकार नहीं किया कि मूर्तियां वर्ष 1949 में विवादित ढांचे के भीतर रखी गई थी, जब उसने यह अभिकथित किया :–

> "यह संभव है कि विवाद, जो वर्ष 1949 में घटित हुआ और वह घटना, जिसमें मूर्ति विवादित भवन में स्थापित की गई थी, में अयोध्या के स्थानीय हिंदुओं की कोई भूमिका नहीं थी; इसके बजाय बाहर के तपस्वी संत इस घटना के लिए उत्तरदायी थे ।"

289. **नरेन्द्र बहादुर सिंह** (प्रतिवादी साक्षी 3/15) : इस साक्षी की मुख्य परीक्षा तारीख 17 अगस्त, 2004 को अभिलिखित की गई थी । तब इस साक्षी की आयु 72 वर्ष थी । इस साक्षी के अनुसार जब उसकी आयु 11 वर्ष थी, तब वह अपने माता-पिता के साथ राम जन्मभूमि गया था और उसने केंद्रीय गुंबद के नीचे रामलला की मूर्ति को विराजमान देखा था । उसने दावा किया कि उस समय उसकी आयु 15 वर्ष थी और वह अकेले ही मंदिर जाता रहा, जब तक कि उसका ध्वंस नहीं हो गया ।

डा. धवन ने इस साक्षी के परिसाक्ष्य के संबंध में निम्नलिखित बिंदुओं का उल्लेख किया :–

> (i) इस साक्षी के साक्ष्य का इस बाबत कि उसने कब विवादित स्थल के दर्शन करने आरंभ किए, विविध समय अवधियां बताने के कारण पूर्णतया अनदेखा किया जाना चाहिए । यद्यपि उसने अपनी मुख्य परीक्षा में अभिकथित किया है कि उसने सर्वप्रथम विवादित स्थल के दर्शन 11 वर्ष की आयु में किए थे, किंतु साथ ही उसने यह भी अभिकथित किया कि वह निर्मोहियों द्वारा विवादित ढांचे का प्रबंधन तब से देख रहा था, जब उसकी आयु 5-6 वर्ष और 8-9 वर्ष थी;
>
> (ii) इस कथन के संबंध में कि उसने विवादित स्थल पर कभी नमाज अदा किए जाते हुए नहीं देखा, उसने अभिकथित किया कि वह विवादित स्थल पर उपस्थित नहीं था और इसलिए नहीं देख सका कि नमाज अदा की जाती थी; और
>
> (iii) इस साक्षी ने उत्तर दिशा में जन्मस्थान मंदिर की

विद्यमानता से इनकार किया, जिसको निर्मोही अखाड़े द्वारा अपने प्रत्युत्तर में स्वीकार किया गया ।

290. **श्री शिव भीख सिंह** (प्रतिवादी साक्षी 3/16) – इस साक्षी की आयु उस तारीख पर 79 वर्ष थी, जब उसने तारीख 24 अगस्त, 2004 को मुख्य परीक्षा के रूप में अपना शपथपत्र शपथपूर्वक प्रस्तुत किया । उसने दावा किया कि वह राम जन्मभूमि के दर्शन 12 वर्ष की आयु से कर रहा था और उसने केंद्रीय गुंबद के नीचे भगवान राम की मूर्ति को देखा था । इस साक्षी ने अभिकथित किया कि रामलला की मूर्ति राम जन्मभूमि मंदिर में स्थित थी और वहां तीन गुफाएं थीं । उसने इस बात से इनकार किया कि मूर्तियों को तारीख 23 दिसंबर, 1949 को विवादित ढांचे में स्थापित किया गया था । उसके अनुसार मूर्तियां विवादित ढांचे में उसके पूर्वजों के जीवनकाल के पहले से विद्यमान थीं । इस साक्षी ने तीन गुंबदों वाले ढांचे, जहां मूर्तियां विद्यमान थीं, में दर्शन के बारे में बताया, किंतु साथ ही अभिकथित किया कि परिक्रमा ईंट की बनी हुई दीवार, जिसके ऊपर लोहे की जाली लगी हुई थी, के भीतर की जाती थी । उसके अनुसार विवादित परिसर में ऐसा कोई स्थान नहीं था, जिसे सीता रसोई के नाम से जाना जाता था । इस साक्षी ने यह भी अभिकथित किया कि जब वह प्रथम बार तीन गुंबदों वाले ढांचे में गया था, तब वह ठीक-ठीक केंद्रीय गुंबद के नीचे नहीं गया था और उसने गुंबद के नीचे के भाग के सामने स्थित द्वार से दर्शन किए थे ।

291. **श्री माता बदल तिवारी** (प्रतिवादी साक्षी 3/17) – इस साक्षी की आयु तारीख 31 अगस्त, 2004 को उसकी मुख्य परीक्षा की तारीख पर 84 वर्ष थी । उसने दावा किया कि उसने राम जन्मभूमि मंदिर के दर्शन प्रथमत: वर्ष 1935 में किए थे, तब उसकी आयु 15 वर्ष थी और वह तब से अयोध्या के दर्शन करता रहा है । इस साक्षी को अयोध्या में बाबरी मस्जिद के बारे में कोई जानकारी नहीं थी कि वह कहां पर स्थित है । तथापि, उसने अभिकथित किया कि उसने मस्जिद के बारे में सुना था । मस्जिद के बारे में इस साक्षी की जानकारी की कमी खंडन वर्ष 1934 के दंगों के बारे में उसकी जानकारी से हो जाता है :–

"मैंने अयोध्या के दंगों के बारे में उल्लेख किया है । यह दंगा वर्ष 1934 में घटित हुआ था । उस समय विवादित ढांचे के कुछ भाग को नुकसान पहुंचाया गया था । अनेक लोगों द्वारा गुंबदों को भी क्षतिग्रस्त किया गया था । नुकसान पहुंचाने वाले हिंदू धर्म के अनुयायी थे ।"

यदि इस साक्षी के अनुसार वे लोग जिन्होंने वर्ष 1934 में गुंबदों को नुकसान पहुंचाया था, हिंदू धर्म से संबंधित थे, तो मस्जिद के विद्यमानता के बारे में उसकी जानकारी की कमी को स्वीकार करना असंभव है ।

292. **आचार्य महंत बंसीधर दास** (प्रतिवादी साक्षी 3/18) : इस साक्षी, जिसका जन्म वर्ष 1905 में हुआ था, ने अभिकथित किया कि वह अयोध्या वर्ष 1930 में आया था । उसकी आयु तारीख 15 सितंबर, 2004 को उसकी मुख्य परीक्षा की तारीख पर 99 वर्ष थी । उसने अभिकथित किया कि वह निरंतर रूप से विवादित ढांचे के दर्शन कर रहा था और भीतरी बरामदे में मूर्तियों की उपासना कर रहा था । इस साक्षी के परिसाक्ष्य के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है :–

(i) इस साक्षी ने शपथपूर्वक कथन किया कि राम चबूतरे को बेदी भी कहा जाता है और इस शब्द का प्रयोग किसी लघु या बृहत्त चबूतरे के लिए किया जाता है;

(ii) इस साक्षी ने अभिकथित किया कि ऐसे असत्य कथन से कोई हानि नहीं होती, यदि वह धार्मिक स्थान पर बोला जाए और कोई उस धार्मिक स्थान को दोषपूर्ण माध्यमों से अर्जित कर रहा हो या उसको बलपूर्वक अपने अधिभोग में ले रहा हो;

(iii) इस साक्षी ने स्वीकार किया कि उसकी स्मरण शक्ति आयु के कारण अच्छी नहीं है;

(iv) इस साक्षी ने लगभग 200 वादों में परिसाक्ष्य दिया है । इस साक्षी ने मुकदमेबाजी में संलिप्त हिंदू पक्षों के अभिकथनों में

समाविष्ट पक्षकथन के विपरीत मंदिर के निर्माण के बारे में अनेक कथाएं बताई हैं :–

(क) उसके अनुसार राम जन्मभूमि की मरम्मत निर्मोही अखाड़ा द्वारा विगत 700 वर्षों से कराई जा रही है;

(ख) कसौटी के काले खंभों वाले मंदिर का निर्माण निर्मोही अखाड़ा द्वारा कराया गया था;

(ग) अभिकथित रूप से यह मंदिर विक्रमादित्य के काल में कन्नौज के राजा द्वारा किया गया था और न कि अयोध्या के राजा द्वारा;

(घ) मीरबाकी ने राम मंदिर को नष्ट किया था, किंतु उसने मस्जिद का निर्माण नहीं किया था और मंदिर का पुनर्निर्माण गोविंद दास द्वारा किया गया था, जो बाबर के शासनकाल के दौरान निर्मोही अखाड़े के महंत थे;

(ङ) गोविंद दास जी ने तीन गुंबदों वाले भवन का निर्माण कराया;

(च) मंदिर के कुछ भाग का निर्माण बाबर के शासनकाल के दौरान कराया गया था, जिसको हुमायूं के शासनकाल के दौरान नष्ट कर दिया गया था, किंतु इस मंदिर का पुनर्निर्माण गोविंद दास जी द्वारा कराया गया था, और

(छ) रामानंद के शिष्य अनंतानंद ने विवादित स्थल पर मंदिर का पुनर्निर्माण कराया ।

293. **श्रीराम मिलन सिंह** (प्रतिवादी साक्षी 3/19) – जब तारीख 17 अगस्त, 2004 को इस साक्षी की मुख्य परीक्षा अभिलिखित की गई, तब उसकी आयु 75 वर्ष थी । उसने भीतरी बरामदे में केंद्रीय गुंबद के नीचे और राम चबूतरे पर मूर्तियों की विद्यमानता को यह अभिकथित करते हुए साबित करने की ईप्सा की कि वह वर्ष 1940 से 1951 तक इस स्थान के दर्शन करता रहा है और वर्ष 1952 के पश्चात् कभी-कभी इस

स्थान के दर्शन करने आता था । जब उससे उसके शपथपत्र के बारे में प्रश्न किए गए, तो उसने अभिकथित किया :–

> "केवल वही व्यक्ति इस शपथपत्र के बारे में अभिकथन कर सकता है, जिसने इसको तैयार किया । मैंने मुख्य परीक्षा के इस शपथपत्र पर हस्ताक्षर करने के पूर्व इसको पूर्णतया नहीं पढ़ा था ... मैंने लखनऊ स्थित उच्च न्यायालय में फाइल किए गए शपथपत्र पर हस्ताक्षर किए थे । मैं यह नहीं बता सकता कि इस शपथपत्र का टंकन कार्य लखनऊ में किया गया था या नहीं । जिस समय मेरे शपथपत्र का प्रारूप तैयार किया गया था, मैं अयोध्या में अपने काउंसेल के स्थान पर था । उन्होंने बताया था कि 'मैं आपके शपथपत्र का प्रारूपण तैयार कर रहा हूं' । मैंने शपथपत्र का प्रारूप तैयार किए जाने के पश्चात् उसकी अंतर्वस्तु को नहीं देखा था ।"

उपरोक्त संस्वीकृति उसके साक्ष्य को अविश्वसनीय बनाती है और इस संस्वीकृति के आधार पर उसका साक्ष्य भरोसे योग्य नहीं पाया जाता ।

294. **महंत राजा रामचंद्र आचार्य** (प्रतिवादी साक्षी 3/20) : जब तारीख 27 अक्तूबर, 2004 को इस साक्षी की मुख्य परीक्षा अभिलिखित की गई, तब उसकी आयु 76 वर्ष थी । वह वाद संख्या 3 के द्वितीय वादी महंत रघुनाथ दास का शिष्य था । इस साक्षी ने अभिकथित किया कि जब वह सर्वप्रथम वर्ष 1943 में अयोध्या आया, तो बाबरी मस्जिद विद्यमान नहीं थी और विवादित भवन मस्जिद नहीं था :–

> "जब मैं सर्वप्रथम वर्ष 1943 में अयोध्या आया, तो यहां पर बाबरी मस्जिद कतई विद्यमान नहीं थी । वर्ष 1943 में विवादित स्थल पर कोई मस्जिद विद्यमान नहीं थी, क्योंकि वहां पर मूर्तियों की उपासना की जाती थी । मैंने बाबरी मस्जिद का नाम सुना है । विवादित भवन बाबरी मस्जिद है । (पुन: अभिकथित किया) यह बाबरी मस्जिद नहीं है; यह एक मंदिर है । विवादित भवन में तीन गुंबद हैं । यह मस्जिद नहीं है । यह भगवान राम का जन्मस्थान है । जब मैं वर्ष 1943 में सर्वप्रथम अयोध्या आया, तो मैंने बाबरी

मस्जिद को बिल्कुल नहीं देखा । मैंने विवादित भवन में नमाज अदा किए जाते हुए कभी नहीं देखा । मैंने देखा कि वहां पर पूजा की जाती थी । (अपनी तरफ से पुन: अभिकथित किया) किसी ऐसे स्थान पर नमाज अदा किए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता जहां पूजा की जाती हो । जब मैं वर्ष 1943 में सर्वप्रथम अयोध्या आया, तो मैंने विवादित स्थल पर मंदिर देखा और न कि मस्जिद । (अपनी तरफ से पुन: अभिकथित किया) वहां पर पूजा सेवा (पूजा की जाती थी और सेवा की जाती है) की जाती थी । विवादित भवन में तीन गुंबद निर्मित थे ।"

इस साक्षी के अनुसार इस विवादित भवन में 1943 से 1950 तक नमाज अदा नहीं की जाती थी और पूजा की जाती थी; और विवादित भवन के तीन गुंबद वाले ढांचे के नीचे पवित्र स्थान स्थित था ।

295. इन साक्षियों, जिन्होंने निर्मोही अखाड़े के समर्थन में शपथपूर्वक कथन किया, के मौखिक साक्ष्य के उपरोक्त विवरण से यह उपदर्शित होता है कि उनके कथन अनुश्रुत कथनों पर आधारित है । वे साक्षी, जिन्होंने अनेक अवसरों पर विवादित स्थल को देखने का दावा किया है, उसके लक्षणों को अभिलिखित कराने में असमर्थ रहे । यद्यपि इन साक्षियों ने तात्पर्यित रूप से यह अभिकथित किया कि तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को कोई घटना घटित नहीं हुई और उनमें से एक साक्षी ने इस आधार पर अनभिज्ञ होने का बहाना किया कि वह घटना के समय विवादित ढांचे के भीतर सो रहा था, अत: उसके कथन को विश्वसनीय और भरोसेमंद कथन के रूप में स्वीकार किया जाना असंभव है । इन साक्षियों के कथन असंगतताओं और विरोधाभासों से भरे पड़े हैं । ये साक्षी परिक्रमा के मार्ग की प्रकृति और मूर्तियों की संख्या के बाबत स्पष्ट नहीं थे । अनेक साक्षियों ने विवादित ढांचे के भीतर स्थित मूर्तियों का विवरण प्रस्तुत करते हुए इस बात को स्वीकार किया कि उन्होंने विवादित ढांचे में प्रवेश नहीं किया । इनमें से अनेक साक्षियों ने मुख्य परीक्षा के बदले प्रस्तुत किए गए अपने शपथपत्रों को पढ़ा भी नहीं था और शपथपत्रों की अंतर्वस्तु को समझे बिना उस पर हस्ताक्षर बना दिए

थे । इनमें से अनेक साक्षी मुख्य परीक्षा में किए गए अपने प्रकथनों की पुष्टि करने में भी समर्थ नहीं थे और वास्तव में उन्होंने अपने ही कथनों का खंडन किया था । इनमें से अनेक साक्षियों ने विवादित ढांचे के संबंध में जो कथन किए, वे निर्मोही अखाड़े के मामले में किए गए अभिवचनों से भिन्न थे । वास्तव में कुछ साक्षियों ने वाद संख्या 4 में किए गए पक्षकथन का समर्थन किया कि बाबरी मस्जिद विद्यमान थी, जहां नमाज अदा की जाती थी । परिणामस्वरूप इन साक्षियों ने कथनों को निर्मोही अखाड़े के मामले के समर्थन में विश्वसनीय साक्ष्य नहीं माना जा सकता ।

ड.6 भीतरी बरामदे के कब्जे के संबंध में निर्मोही अखाड़े का दावा

296. वाद संख्या 3 में मस्जिद के तीन गुंबदों वाले ढांचे को सम्मिलित करते हुए भीतरी बरामदे के संबंध में निर्मोही अखाड़े का दावा : निर्मोही अखाड़े ने तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की घटना, जिसके दौरान विवादित ढांचे में मूर्तियों को चुपके से स्थापित कर दिया गया, से इनकार किया है । निर्मोही अखाड़े के अनुसार ढांचा मंदिर का है और न कि मस्जिद का । इस निवेदन के समर्थन में जिस मौखिक साक्ष्य को प्रस्तुत किया गया, का विश्लेषण पहले ही किया जा चुका है । मौखिक साक्ष्य में निर्मोही अखाड़े का कोई तर्कपूर्ण, विश्वसनीय या भरोसेमंद कथन इस बाबत उपदर्शित नहीं होता कि वे भीतरी बरामदे या ढांचे के कब्जे में थे । निर्मोही अखाड़े द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्षियों के मौखिक कथनों के संबंध में इस प्रकार की स्थिति होने के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि इस बाबत संवीक्षा की जाए कि क्या दस्तावेजी साक्ष्य निर्मोही अखाड़े के भीतरी बरामदे और ढांचे के कब्जे में होने के पक्षकथन का समर्थन करते हैं ।

297. वाद संख्या 3 में वादियों की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री एस. के जैन ने न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा द्वारा दिए गए निर्णयों में समाविष्ट निष्कर्षों पर जोर दिया कि निर्मोही अखाड़े की उपस्थिति अयोध्या में वर्ष 1734 में तब से है जब महंत गोविन्द दास जयपुर से अयोध्या आए ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने वाद संख्या 3 में विवाद्यक संख्या 17 को निर्णीत करते हुए मताभिव्यक्ति की :–

> "799. ... वादी संख्या 1 निर्मोही अखाड़ा बैरागियों के रामानंदी संप्रदाय का पंचायती मठ है और इस प्रकार वह एक धार्मिक संप्रदाय है, जो अपने स्वयं के रीति-रिवाजों के अनुसार अपनी धार्मिक आस्था और कार्यों का अनुसरण करता है । हम तथापि, आगे यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अयोध्या में उनकी उपस्थिति वर्ष 1734 के पश्चात् किसी समय से पाई जाती है और उसके पहले से नहीं ।"

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने **महंत भास्कर दास** (प्रतिवादी साक्षी 3/1) और **महंत राजा रामचंद्र आचार्य** (प्रतिवादी साक्षी 3/20) के साक्ष्य का अवलंब यह अभिनिर्धारित करते हुए लिया :–

> "निर्मोही अखाड़ा बैरागियों के रामानंदी संप्रदाय का पंचायती मठ है और इस प्रकार यह एक धार्मिक संप्रदाय है । इस संप्रदाय को पहले ही वर्ष 1949 में रजिस्ट्रीकृत किया जा चुका है ।"

298. इन निष्कर्षों के आधार पर यह साबित नहीं किया जा सकता कि निर्मोही भीतरी बरामदे के कब्जे में थे । दस्तावेजी साक्ष्य, जिसका अवलंब उनके द्वारा लिया गया, की संवीक्षा करते हुए अयोध्या या विवादित स्थल के निकट निर्मोही अखाड़े की मात्र उपस्थिति और विवादित ढांचे के वास्तविक कब्जे के मध्य विभेद किया जाना चाहिए । इस संदर्भ में श्री एस. के. जैन ने 1770 के टीफेन्थेलर के कथन का उल्लेख किया, जिसमें बेदी या भगवान राम के जन्मस्थान के प्रतीक 'पालना' की उपस्थिति को निर्दिष्ट किया गया । टीफेन्थेलर के कथन में 'पालना' को निर्दिष्ट किए जाने को इस बात का सूचक नहीं माना जा सकता कि निर्मोही अखाड़ा मस्जिद के विवादित ढांचे या भीतरी बरामदे के कब्जे में था । **श्री आचार्य महंत बंसीधर दास** उर्फ **उड़िया बाबा** (प्रतिवादी साक्षी 3/18), जो निर्मोही अखाड़े के साक्षी थे, ने अभिकथित किया कि राम चबूतरे को बेदी भी कहा जाता है । इस साक्षी के कथन को इस सीमा तक कि बेदी/पालना राम चबूतरे पर स्थित था, अप्रासंगिक

नहीं कहा जा सकता और इस कथन को और साथ ही टीफेन्थेलर द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों को भी साक्ष्य की संपूर्णता के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए, जिसका उन्होंने उल्लेख किया है । अन्य दस्तावेजों, जिनका अवलंब लिया गया है, निम्नलिखित हैं :–

(i) वाल्टर हेमिल्टन द्वारा लिखित 'ईस्ट इंडिया गजेटियर आफ हिंदुस्तान';

(ii) एडवर्ड थार्नटन द्वारा लिखित 'द गजेटियर आफ द टेरिटरीज अंडर द गर्वनमेंट ऑफ ईस्ट इंडिया कंपनी';

(iii) मस्जिद के अहाते के भीतर कतिपय बैरागियों द्वारा निर्मित 'कोठरी' के संबंध में मीर राजेब अली खातीब द्वारा तारीख 25 सितंबर, 1866 को दर्ज कराई गई शिकायत;

(iv) कार्नेजी द्वारा लिखित 'हिस्टोरिकल स्केच आफ फैज़ाबाद';

(v) उत्तरी दिशा में नए द्वार के निर्माण के लिए महंत खेम दास को तारीख 13 अप्रैल, 1877 को प्रदान की गई अनुज्ञा;

(vi) नए द्वार के लिए अनुज्ञा प्रदान किए जाने के विरुद्ध तारीख 13 दिसंबर, 1877 को फाइल की गई अपील;

(vii) उपरोक्त अपील को दृष्टि में रखते हुए उपायुक्त द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट;

(viii) आयुक्त का अपील खारिज करते हुए तारीख 13 दिसम्बर, 1877 का आदेश;

(ix) अवध प्रांत का गजेटियर (1877-78);

(x) चबूतरे के प्रयोग के लिए किराए की ईप्सा करते हुए **महंत रघुबर दास** के विरुद्ध सैयद मोहम्मद असगर द्वारा तारीख 8 नवंबर, 1882 को संस्थित कराए गए वाद का वादपत्र;

(xi) वाद खारिज करते हुए फैज़ाबाद के उपन्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 18 जून, 1883 का आदेश;

(xii) मस्जिद में मरम्मत कराए जाने के लिए अनुज्ञा प्राप्ति

हेतु सैय्यद मोहम्मद असगर द्वारा फाइल किया गया 2 नवंबर, 1883 का आवेदन;

(xiii) उपायुक्त द्वारा तारीख 12 जनवरी, 1884 को पारित आदेश;

(xiv) सहायक आयुक्त द्वारा तारीख 22 जनवरी, 1884 को पारित आदेश; और

(xv) मस्जिद की दीवारों की पुताई के लिए सैय्यद मोहम्मद असगर द्वारा कराए गए कार्य को ध्यान में रखते हुए स्थल निरीक्षण की ईप्सा करते हुए महंत रघुबर दास द्वारा तारीख 27 जून, 1884 को फाइल की गई शिकायत ।

299. इन दस्तावेजों का विश्लेषण न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा पारित किए गए निर्णय, जिसमें यह मताभिव्यक्ति की थी कि राम चबूतरे पर मूर्तियां विद्यमान थीं और निर्मोही अखाड़ा उन मूर्तियों का पूजन और देखभाल कर रहा था, में किया गया है, जिस मताभिव्यक्ति को अन्य हिंदू पक्षों द्वारा गंभीरतापूर्वक विवादित नहीं किया गया । तथापि, न्यायमूर्ति अग्रवाल ने यह मताभिव्यक्ति भी की कि यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई आधार नहीं है कि निर्मोही अखाड़ा ऐसा (मूर्तियों का पूजन और देखभाल) तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को मूर्तियों के ढांचे के भीतर स्थानांतरित कर दिए जाने के पश्चात् भी करता रहा । उन्होंने यह निष्कर्ष इसलिए निकाला क्योंकि निर्मोही अखाड़े ने इस बात से स्पष्टतया इनकार कर दिया था कि तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को कोई घटना घटित हुई थी और उनके पास इस घटना, जो (तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की) मध्यरात्रि को घटित हुई, के बाबत कोई ठोस स्पष्टीकरण नहीं था । उन दस्तावेजों, जिनका अवलंब निर्मोही अखाड़े द्वारा लिया गया, की सावधानीपूर्वक संवीक्षा के आधार पर यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि निर्मोही अखाड़े के अनन्य कब्जे में विवादित ढांचा था । हमको श्री एस. के. जैन के इस निवेदन को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मस्जिद का विवादित ढांचा चारों तरफ से भवनों से घिरा हुआ था और इस विवादित ढांचे का

बाहरी बरामदा, जिसमें राम चबूतरा, सीता रसोई और भंडार भी सम्मिलित थे, को मस्जिद में प्रवेश के प्रयोजनार्थ पार करना पड़ता था । बाहरी बरामदे के दो द्वार थे अर्थात् सिंह द्वार और हनुमत द्वार । किंतु क्या विवादित ढांचे के चारों तरफ से भवनों से घिरे हुए भवन के होने की प्रकृति के कारण स्वयमेव ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि क्या भीतरी ढांचा निर्मोही अखाड़े के कब्जे में था ? यह अनुमान लगाया जाना संभव नहीं है क्योंकि यह अनुमान अधिसंभाव्यताओं पर आधारित होगा ।

300. महंत रघुबर द्वारा वर्ष 1885 में एक वाद चबूतरे पर मंदिर का निर्माण कराए जाने की अनुज्ञा की ईप्सा करते हुए संस्थित कराया गया था । फैज़ाबाद के उप-न्यायाधीश ने तारीख 24 दिसंबर, 1985 के अपने निर्णय में मताभिव्यक्ति की कि यद्यपि चबूतरे के अधिभोग के अंतर्गत आने वाला क्षेत्र वादी के स्वामित्व और कब्जे में था, फिर भी निर्माण कराए जाने की अनुज्ञा प्रदान किए जाने से इस आधार पर इनकार किया जाना चाहिए कि यह निर्माण लोक हित में नहीं था और इससे हिंदुओं और मुस्लिम समुदाय के मध्य टकराव की शुरुआत हो जाएगी । इस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई अपील में फैज़ाबाद के जिला न्यायाधीश ने तारीख 18/26 मार्च, 1886 को महंत रघुबर दास के पक्ष में चबूतरे के स्वामित्व के संबंध में की गई मताभिव्यक्ति को मिटा दिया । श्री एस. के. जैन ने अपने लिखित निवेदनों में इस बात को विनम्रतापूर्वक स्वीकार किया है कि 1885 के वाद से उद्भूत होने वाली घटनाओं का अवलंब बाहरी बरामदे में स्थित राम चबूतरे पर महंत रघुबर दास की उपस्थिति दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ लिया गया है । इसके अतिरिक्त निर्मोही 1985 के वाद के बारे में उभयभावी (दो विरोधी मूल्यों या गुणों में से एक या दोनों को धारण करने वाला) रहे हैं और उन्होंने एक प्रक्रम पर इससे अनभिज्ञता दर्शित की और तत्पश्चात् दूसरे प्रक्रम पर इससे असंगत स्थिति अपनाई ।

301. दस्तावेजों के अगले समुच्चय, जिनका अवलंब निर्मोही अखाड़ा द्वारा लिया गया, वर्ष 1900 से आरंभ होते हैं । इन दस्तावेजों का उल्लेख नीचे किया गया है :–

(i) तीर्थ यात्रियों को पीने योग्य जल उपलब्ध कराए जाने के प्रयोजनार्थ झिंगू को अनुज्ञा प्रदान करने वाला करार (प्रदर्श 8);

(ii) एच. आर. नेविल का 'द गज़ेटियर आफ द यूनाइटेड प्रोविंसेज़ आफ आगरा एंड अवध, 1905', जिसके द्वारा यह अभिकथित किया गया कि निर्मोही अखाड़ा संप्रदाय को औपचारिक रूप से रामकोट स्थित राम जन्मभूमि मंदिर का स्वत्व प्राप्त है, जिसके अवशेष आज भी उनके स्वामित्वाधीन हैं;

(iii) महंत रघुनाथ दास के पक्ष में नामांतरण प्रविष्टि (प्रदर्श 49);

(iv) तारीख 13 अक्तूबर, 1942 का ठेका दुकान का करार (प्रदर्श 9);

(v) महंत रघुनाथ दास द्वारा एक दुकान के संबंध में निष्पादित तारीख 29 अक्तूबर, 1945 का करार (प्रदर्श 10);

(vi) वक्फ़ निरीक्षक द्वारा यह अभिकथित करते हुए प्रस्तुत की गई रिपोर्ट कि मुस्लिम, हिंदुओं और सिखों के भय के कारण ईशा की नमाज अदा करने में असमर्थ थे (प्रदर्श ए-63 - वाद संख्या 1);

(vii) वक्फ़ निरीक्षक की तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 के मध्य पुलिस कार्मिकों की उपस्थिति में अभिलिखित तारीख 29 दिसंबर, 1949 की रिपोर्ट (प्रदर्श ए-64 - वाद संख्या 1); और इस बाबत रिपोर्ट कि सिवाय शुक्रवार के, जब मस्जिद 3-4 घंटे तक खुली रहती है, कोई नमाज अदा नहीं की जा रही थी और अनेक बैरागी मस्जिद का बलपूर्वक कब्जा लेने का प्रयास कर रहे थे;

(viii) रिसीवर की तारीख 5 जनवरी, 1950 की रिपोर्ट, जिसमें उस संपत्ति की चौहद्दी दर्शित की गई है, जिसका कब्जा निर्मोही अखाड़े द्वारा लिया गया है (प्रदर्श ए-3 - वाद संख्या 4) । तारीख 5 जनवरी, 1950 की संलग्न डाक में यह निवेदन किया गया है कि महंत बलदेव दास द्वारा धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में आक्षेप फाइल किए गए थे (प्रदर्श 6 - वाद संख्या 3);

(ix) वर्ष 1961 में बाहरी बरामदे में निर्माण किए जाने की अनुज्ञा की ईप्सा की गई थी; और

(x) नगर मजिस्ट्रेट का यह अभिकथित करते हुए तारीख 9 फरवरी, 1961 का स्पष्टीकरण कि तिरपाल या आवरण को बदले जाने का कोई विरोध नहीं था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उन दस्तावेजों, जिनका अवलंब निर्मोही अखाड़े द्वारा लिया गया का उल्लेख करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि दस्तावेजों, जिनके पक्ष प्रतिवादी नहीं थे, की अंतर्वस्तु स्वत्व और कब्जे के प्रश्नों के संबंध में सुसंगत नहीं है । निर्मोही अखाड़े द्वारा जिस दस्तावेजी साक्ष्य का अवलंब लिया गया, भीतरी बरामदे के भीतर स्थित परिसर के संबंध में कोई प्रकाश नहीं डालते ।

302. डा. राजीव धवन ने अपील की सुनवाई के अनुक्रम में उन प्रदर्शों, जिनका अवलंब निर्मोही अखाड़े द्वारा लिया गया था, का विस्तारपूर्वक उत्तर फाइल किया । सांप्रदायिक टकराव के इतिहास में घटनाओं के क्रम में वर्ष 1856-57 और 1934 में हिंदू और मुस्लिमों के मध्य टकराव की एक श्रृंखला उपदर्शित होती है । मस्जिद को वर्ष 1934 में भागत: क्षतिग्रस्त कर दिया गया था और तत्पश्चात् मस्जिद में नमाज अदा किए जाने के कार्य को अवरोधित किया गया था, जिसके कारण मुस्लिमों के नमाज अदा करने के अधिकार से इनकार किए जाने का प्रश्न अंतर्वलित हुआ । इसके पश्चात् वे घटनाएं हुईं जो तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को घटित हुई, जब केंद्रीय गुंबद के नीचे चुपचाप मूर्तियों को रख दिया गया । इसके तुरंत पश्चात् धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ हुईं जिनके परिणामस्वरूप संपत्ति कुर्क कर दी गई । इस पृष्ठभूमि में निर्मोही अखाड़े के इस पक्षकथन को स्वीकार किया जाना कठिन होगा कि विवादित ढांचा मंदिर था, जो उनके अनन्य कब्जे में था और तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को कोई घटना घटित नहीं हुई ।

मस्जिद के संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य (1934-1949)

303. सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की तरफ से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ

काउंसेल श्री जफ़रयाब जीलानी ने विवादित ढांचे के कब्जे के संबंध में निर्मोही अखाड़े के दावे से इनकार किए जाने के प्रयोजनार्थ इस पक्षकथन के समर्थन में फाइल किए गए दस्तावेजी साक्ष्य का अवलंब लिया कि भीतरी बरामदे के भीतर स्थित ढांचा मस्जिद था और मुस्लिमों द्वारा उसका प्रयोग वर्ष 1934 से वर्ष 1949 तक नमाज अदा किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जा रहा था । यह दस्तावेजी साक्ष्य मस्जिद के अनन्य कब्जे के संबंध में निर्मोही अखाड़े के दावे की सत्यता पर प्रभाव डालता है और इसलिए इस दस्तावेजी साक्ष्य की संवीक्षा की जाने की आवश्यकता है । इस दस्तावेजी साक्ष्य में निम्नलिखित बातें समाविष्ट हैं :–

(i) फैज़ाबाद के अपर सिविल न्यायाधीश (प्रदर्श ए-5 - वाद संख्या 4) के समक्ष तारीख 4 जून, 1942 के आदेश (प्रदर्श ए-4 - वाद संख्या 4) और 1941 के नियमित वाद संख्या 95 (महंत रामचरण दास **बनाम** रघुनाथ दास) में तारीख 6 जुलाई, 1942 की डिक्री की प्रमाणित प्रति । इस वाद में समझौता हो गया था । समझौते की शर्तों में 'बाबरी मस्जिद' का विनिर्दिष्ट संदर्भ समाविष्ट है (प्रदर्श ए-6 वाद संख्या 4) –

'2. मोहल्ला रामकोट, नगर अयोध्या, परगना हवेली अवध, तहसील और जिला फैज़ाबाद में स्थित राम जन्मभूमि – बाबरी मस्जिद पर स्थित भूमि के साथ पक्का मंदिर, जिसकी चौहद्दी को नीचे वर्णित किया गया है –

पूर्व : परती और कब्रिस्तान

पश्चिम : बाबरी मस्जिद

उत्तर : पक्की सड़क

दक्षिण : कब्रिस्तान ।'

यह वाद अन्य बातों के साथ-साथ निर्मोहियों के मध्य था । उपरोक्त दस्तावेज से यह उपदर्शित होता है कि मस्जिद की विद्यमानता से इनकार नहीं किया जा सकता;

(ii) मस्जिद का एक भाग तारीख 27 मार्च, 1934 को दंगे होने के पश्चात् बकरीद के अवसर पर या उसके आस-पास नष्ट कर दिया गया था । इस संबंध में परिसर की मरम्मत से संबंधित दस्तावेज उपलब्ध हैं –

(क) बाबरी मस्जिद की सफाई और धार्मिक सेवाओं के लिए प्रयोग की अनुज्ञा प्रदान की गई थी (प्रदर्श ए-49 वाद संख्या 1);

(ख) मोहम्मद ज़की और अन्य द्वारा मस्जिद को क्षति पहुंचाने के लिए बैरागियों से जुर्माने की वसूली के लिए तारीख5 जून, 1934 को फाइल किया गया आवेदन (प्रदर्श ए-6 वाद संख्या 1);

(ग) जिला मजिस्ट्रेट का मस्जिद को क्षति पहुंचाए जाने के लिए प्रतिकर के संदाय के लिए तारीख 6 अक्तूबर, 1934 का आदेश (प्रदर्श ए-43 वाद संख्या 1);

(घ) मस्जिद की मरम्मत के लिए ठेकेदार तहावर खान का उसके बिलों के संदाय के लिए तारीख 25 फरवरी, 1935 का आवेदन (प्रदर्श ए-51 वाद संख्या 1);

(ङ) मस्जिद की मरम्मत के लिए बिलों के संदाय के पूर्व वरिष्ठ खंड मजिस्ट्रेट, सदर द्वारा कराए गए कार्य के निरीक्षण के लिए फैज़ाबाद के उपायुक्त का तारीख 26 फरवरी, 1935 का आदेश (प्रदर्श ए-45 वाद संख्या 1);

(च) ठेकेदार द्वारा गुंबदों की मरम्मत को सम्मिलित करते हुए तारीख 15 अप्रैल, 1935 को प्रस्तुत किए गए मरम्मत कार्य का आकलन (प्रदर्श ए-44 वाद संख्या 1);

(छ) कार्य की समाप्ति में विलंब के संबंध में ठेकेदार द्वारा तारीख 16 अप्रैल, 1935 का आवेदन । इस आवेदन में यह अभिकथित किया गया था कि गुंबद के मरम्मत कार्य की तैयारी की जा रही थी और संगमरमर की पटियों पर 'अल्लाह' शब्द उत्कीर्णित किया जा रहा था (प्रदर्श ए-50 वाद संख्या 1);

(ज) बाबरी मस्जिद की मरम्मत के संबंध में फैज़ाबाद के लोक निर्माण विभाग के सहायक अभियंता का तारीख 21 नवंबर, 1935 का यह टिप्पणी करते हुए निरीक्षण टिप्पण कार्य का निरीक्षण किया गया और संतोषजनक पाया गया (प्रदर्श ए-48 वाद संख्या 1);

(झ) मस्जिद की मरम्मत के संबंध में ठेकेदार के बिल पर बिल लिपिक की तारीख 27 जनवरी, 1936 की रिपोर्ट (प्रदर्श ए-46 वाद संख्या 1);

(ञ) श्री ए. डी. डिक्सन का बाबरी मस्जिद की मरम्मत के कार्य के लिए संदाय के संबंध में तारीख 29 जनवरी, 1936 का आदेश (प्रदर्श ए-47 वाद संख्या 1);

(ट) ठेकेदार का बाबरी मस्जिद की मरम्मत के लिए प्रस्तुत किए गए बिलों से की गई कटौती की शिकायत करते हुए तारीख 30 अप्रैल, 1936 का आवेदन (प्रदर्श ए-52 वाद संख्या 1) ।

उपरोक्त दस्तावेज, जिनको सम्यक् रूप से प्रदर्शित किया गया, उपदर्शित करते हैं कि 1934 के दंगों के पश्चात् मुस्लिम ठेकेदार को बाबरी मस्जिद की मरम्मत के कार्य पर लगाया गया था । इन दस्तावेजों में मस्जिद को हुए नुकसान का भी उल्लेख किया गया है और उस कार्य का भी उल्लेख है, जो मस्जिद के पुन:स्थापन के लिए ठेकेदार द्वारा किया गया ।

304. मरम्मत से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य के अतिरिक्त बाबरी मस्जिद के इमाम की सेवाओं से संबंधित दस्तावेजों का एक अन्य समुच्चय :–

(i) बाबरी मस्जिद के न्यासी सय्यद मोहम्मद ज़की द्वारा तारीख 25 जुलाई, 1936 को बाबरी मस्जिद के पेशे-इमाम मौलवी अब्दुल गफूर के पक्ष में वर्ष 1935 तक बकाया वेतन के संदाय के संबंध में निष्पादित करार/वचनबंध (प्रदर्श ए-47 वाद संख्या 1);

(ii) वक्फ़ आयुक्त के समक्ष 1936 के मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम की धारा 4 के अधीन सूचना के उत्तर में सय्यद मोहम्मद ज़की का तारीख 19/20 जुलाई, 1938 का आवेदन (प्रदर्श ए-67 वाद संख्या 1);

(iii) फैज़ाबाद के वक्फ़ आयुक्त के समक्ष बाबरी मस्जिद के पेशे-इमाम अब्दुल गफ्फार का तारीख 20 अगस्त, 1938 का मुतवल्ली को तारीख 31 जुलाई, 1938 तक के वेतन के बकाए का संदाय किए जाने के निर्देश की ईप्सा करते हुए आवेदन (प्रदर्श ए-61 वाद संख्या 1);

(iv) सुन्नी वक्फ़ बोर्ड द्वारा तारीख 27 अक्तूबर, 1943 की सूचना का सय्यद मोहम्मद ज़की (भूतपूर्व मुतवल्ली) के भाई द्वारा तारीख 20 नवंबर, 1943 का उत्तर (प्रदर्श ए-66 वाद संख्या 1) । इस पत्र में शुक्रवार की नमाज की आवश्यकताओं के साथ-साथ मस्जिद की दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूर्ण किए जाने के लिए इंतजाम के स्पष्ट रूप से संदर्भ समाविष्ट हैं –

> "चटाई, फर्श पर बिछाने के लिए कपड़ा और जानमाज-प्रार्थना के लिए बिछाया जाने वाला गलीचा इत्यादि नमाज की दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त हैं । फर्श पर बिछाए जाने वाले अन्य कपड़े और नमाज के लिए बिछाए जाने वाले गलीचे पेशे-इमाम मौलवी अब्दुल गफ्फार के पास रखे गए हैं । इनको मस्जिद में प्रत्येक शुक्रवार को लाया जाता है और जुम्मा की प्रार्थना के पश्चात् उसी स्थान पर वापस भेज दिया जाता है क्योंकि फर्श पर बिछाए जाने वाले कपड़े अक्सर मस्जिद से गायब हो जाते हैं । इसी कारणवश समस्त चटाइयां और फर्श पर बिछाए जाने वाले कपड़े मस्जिद में रखे जाते हैं ।"

(v) 1936 के उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम की धारा 5(2) के अधीन वाद संस्थित कराए जाने के पूर्व शिया वक्फ़ बोर्ड द्वारा सुन्नी वक्फ़ बोर्ड को तारीख 11 अप्रैल, 1945 को भेजी गई सूचना, जिसके द्वारा तारीख 26 फरवरी, 1944 की अधिसूचना,

जिसके द्वारा मस्जिद को सुन्नी वक्फ़ घोषित किया गया था, को चुनौती दी गई (प्रदर्श ए-65 वाद संख्या 1);

(vi) मुतवल्ली की मृत्यु के कारण तौलियत के प्रभार के बारे में सुन्नी वक्फ़ बोर्ड के सचिव द्वारा तारीख 25 नवंबर, 1948 को भेजी गई सूचना (प्रदर्श ए-62 वाद संख्या 1);

(vii) प्रार्थना के लिए जाने वाले मुस्लिमों के उत्पीड़न के संबंध में वक्फ़ निरीक्षक की तारीख 10/12 दिसंबर, 1949 की रिपोर्ट (प्रदर्श ए-63 वाद संख्या 1); और

(viii) बाबरी मस्जिद की स्थिति के संबंध में वक्फ़ निरीक्षक की तारीख 23 दिसंबर, 1949 की यह अभिकथित करते हुए रिपोर्ट कि मस्जिद की चाबियां मुस्लिमों के कब्जे में रहती थीं और केवल शुक्रवार की नमाज अदा की जाती थी (प्रदर्श ए-64 वाद संख्या 1) –

> "मुझे तारीख 22 दिसंबर, 1949 को अयोध्या स्थित बाबरी मस्जिद और कब्रिस्तान की जांच करनी थी । मैंने जांच करने में संपूर्ण दिवस लगाया । मुझे अपनी जांच के आधार पर निम्नलिखित परिस्थितियों और घटनाओं के बारे में ज्ञात हुआ । प्रकटत: बाबा रघुनाथ के जन्मस्थान के दर्शन के लिए आगमन के पश्चात् तीन माह की अवधि व्यतीत हो चुकी है । उन्होंने बैरागियों और पुजारियों-श्रद्धालुओं से प्रबलतापूर्वक आह्वान किया कि रामायण पाठ – अर्थात् रामायण का सस्वर पाठ – जन्मस्थान में किया जाना चाहिए । इस संदेश का प्रसार समस्त निकटवर्ती लोगों और पास-पड़ोस के क्षेत्रों तक हुआ । बाबा रघुबर दास के प्रस्थान के एक माह पश्चात् हजारों हिंदू और पुजारी और पंडित रामायण के पाठ के लिए वहां पर एकत्रित हो गए । रामायण का सस्वर पाठ कई सप्ताह तक होता रहा । इसी दौरान बैरागियों ने मस्जिद के आगे वाले भाग और कब्रिस्तान के भाग की खुदाई आरंभ कर दी और उसको जमीन के स्तर पर ला दिया । उन्होंने एक कामचलाऊ स्थान का भी निर्माण कर दिया और कुछ कब्रों के

स्थल पर पत्थर रख दिए । रामायण के सस्वर पाठ के समय पुलिस का बंदोबस्त था । इसके बावजूद कब्रों को खोद दिया गया । पुलिस ने चार लोगों को गिरफ्तार किया जिनको बाद में बंधपत्र प्रस्तुत करने पर निर्मुक्त कर दिया गया । ख्वाजा रहमतउल्ला का मकबरा, जो कब्रिस्तान के निकट एक ऊंचे स्थान पर स्थित था, को भी खोद दिया गया और उसको भी जमीन के स्तर पर ला दिया गया । एक बैरागी ने वहां पर निवास करना भी आरंभ कर दिया । बैरागी पक्की कब्र, जो मस्जिद के दीवारों से सटे हुए बरामदे के दरवाजे के निकट स्थित थी, के निकट बैठे थे । बैरागियों ने वहां पर एक झोपड़ी का भी निर्माण कर दिया था । बैरागियों ने इस सस्वर पाठ के आरंभ होने के पश्चात् दीवार को तोड़ दिया था और लूटमार भी की थी । मस्जिद के मोअज्जिम के साथ मारपीट की गई थी और तत्पश्चात् उन्होंने (बैरागियों ने) मस्जिद पर लगे हुए शिलालेख को भी खोदने का प्रयास किया था । दो अपरिचित मुस्लिमों को पीटा गया, जिनको गंभीर क्षतियां कारित हुई थीं । वर्तमान में मस्जिद के बाहर दो शिविर स्थित हैं, इन शिविरों में से एक शिविर में पुलिस कांस्टेबल नियुक्त है और दूसरे शिविर में बटालियनों के सिपाही नियुक्त हैं । इन कांस्टेबलों और सिपाहियों की कुल संख्या लगभग 7 से 8 है । अब मस्जिद में ताला पड़ा रहता है । <u>न तो अजान की इजाजत है और न ही नमाज अदा की जाती है, सिवाय जुम्मे की दिन और समय की नमाज के । मस्जिद का ताला-चाबी समेत का कब्जा मुस्लिमों के पास है । किंतु पुलिस उनको ताला खोलने की इजाजत नहीं देती । ताला जुम्मा के दिन अर्थात् शुक्रवार को दो या तीन घंटे के लिए खोला जाता है । इस अवधि के दौरान मस्जिद की सफाई की जाती है और जुम्मा की नमाज अदा की जाती है । तत्पश्चात्, इसमें पुनः ताला बंद कर दिया जाता है । जुम्मा के समय अत्यधिक शोर होता है । जब नमाजी सीढियों से नीचे जाते हैं, तो उनके</u>

ऊपर जूते और मिट्टी के गुब्बारे फेके जाते हैं । किंतु मुस्लिम भयवश कोई प्रतिक्रिया नहीं देते । रघुबर दास के पश्चात् श्री लोहिया भी अयोध्या आए थे और उन्होंने लोगों को यह कहते हुए संबोधित किया था कि कब्रों के स्थान पर फूलों वाले पौधे रोप दिए जाएं । लखनऊ से एक मंत्री भी आए थे । बैरागियों ने उनसे कहा था कि मस्जिद जन्मभूमि है । इसका कब्जा लेने में हमारी सहायता करिए । उन्होंने (मंत्री ने) बलपूर्वक ऐसा करने से मना कर दिया । यह सुनकर बैरागी उन पर क्रोधित हो गए और उनको (मंत्री को) पुलिस संरक्षण में फैज़ाबाद लौटना पड़ा । इसी दौरान अयोध्या के कनक भवन मंदिर में महंत बाबास्थान, महंत रघुबरदास, वेदांती जी, नारायण दास और आचार्य जी मुस्लिमों से मुलाकात करना चाहते थे, किंतु मुस्लिम मुलाकात करने नहीं आए सिवाय जहूर अहमद के । हिंदुओं ने जहूर अहमद से कहा कि वे मस्जिद प्राप्त करने में हिंदुओं की सहायता करे । उनको (जहूर अहमद को) बताया गया कि हम लोग आपस में भाई हैं, अन्यथा हम शत्रु हैं । मैं रात्रि के दौरान अयोध्या में रहा । प्रातःकाल मुझे ज्ञात हुआ कि बैरागी मस्जिद का कब्जा बलपूर्वक प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं । आज जुम्मा शुक्रवार है । जब मैं स्थल पर पहुंचा तो मस्जिद के बरामदे में 10 से 15 बैरागी लाठियों और कुल्हाड़ियों के साथ उपस्थित पाए गए और अनेक बैरागी लाठियों के साथ मस्जिद के द्वार पर बैठे हैं । पास-पड़ोस के क्षेत्रों के हिंदू भी वहां पर एकत्रित हो रहे हैं । नगर मजिस्ट्रेट, शहर के पुलिस अधिकारी और अन्य पुलिस बल को पर्याप्त मात्रा में तैनात कर दिया गया है । फैज़ाबाद के मुस्लिम निश्चित रूप से जुम्मा (शुक्रवार) की नमाज अदा करने आएंगे । तब क्या होगा, मुझे नहीं ज्ञात । अब मैं नदी पार कर रहा हूं और लकड़मंडी गोंडा जा रहा हूं ।'

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि पेशे-इमाम के बकाए को सम्मिलित करते हुए वेतन के संदाय के लिए वचनबंध/करार को साबित नहीं किया । यद्यपि इस दस्तावेज को साक्ष्य में प्रदर्शित किया गया है, फिर भी यह दस्तावेज वक्फ़ निरीक्षक के समक्ष पेशे इमाम द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन में करार के निबंधनों के अनुसार उसके वेतन के संदाय के लिए संदर्भित है, जिसकी एक प्रति आवेदन के साथ फाइल की गई । जहां तक वक्फ़ निरीक्षक का रिपोर्टों का संबंध है, वास्तव में निर्मोही अखाड़ा की तरफ से फाइल किए गए लिखित निवेदनों में इन दोनों ही रिपोर्टों का अवलंब लिया गया है । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा इन रिपोर्टों का अवलंब न लिए जाने के प्रयोजनार्थ उपदर्शित कारण कि किसी ने वक्फ़ निरीक्षक को नहीं देखा – सत्याभासी है । तारीख 10/12 दिसंबर, 1949 की रिपोर्ट का विनिर्दिष्ट रूप से अवलंब वाद संख्या 5 के वादपत्र में और वाद संख्या 5 में वादी संख्या 3 की मुख्य परीक्षा में लिया गया है ।

305. उपरोक्त दस्तावेजों से यह प्रदर्शित होता है :–

(i) वर्ष 1934 के दंगों के पश्चात् मस्जिद की पूर्वावस्था की प्राप्ति के लिए उठाए गए कदम;

(ii) मस्जिद की मरम्मत के लिए ठेकेदार द्वारा किए गए मरम्मत कार्य और लोक निर्माण विभाग द्वारा किए गए संदाय;

(iii) पेशे-इमाम की सेवाओं की वचनबद्धता और उसके वेतन के बकाए के असंदाय से संबंधित विवाद;

(iv) वर्ष 1949 में वक्फ़ निरीक्षक की यह अभिकथित करते हुए रिपोर्ट कि मस्जिद में नमाज अदा करने के लिए पहुंचने वाले मुस्लिमों का उत्पीड़न किया जा रहा था, जिसके परिणामस्वरूप केवल शुक्रवार की नमाज अदा की जा रही थी; और

(v) वक्फ़ निरीक्षक द्वारा मस्जिद पर खतरे को लेकर व्यक्त की गई आशंका ।

306. मौखिक साक्ष्य और दस्तावेजी सामग्री के आधार पर उपरोक्त

विश्लेषण को दृष्टि में रखते हुए निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :–

(i) निर्मोही साक्षियों के मौखिक कथनों में इस बाबत गंभीर दुर्बलताएं हैं कि विवादित ढांचा मस्जिद नहीं था बल्कि जन्मभूमि मंदिर था;

(ii) दस्तावेजी साक्ष्य, जिसका अवलंब निर्मोही अखाड़ा द्वारा लिया गया, से भीतरी बरामदे और उसके भीतर स्थित मस्जिद, जो वाद संख्या 3 की विषयवस्तु है, के ढांचे पर उनका कब्जा साबित नहीं होता;

(iii) निर्मोही अखाड़ा के दावों के विपरीत दस्तावेजी साक्ष्य वर्ष 1934 और 1949 के मध्य मस्जिद के ढांचे की विद्यमानता को साबित करते हैं; और

(iv) जहां तक मस्जिद के भीतर नमाज का प्रश्न है, मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा करने में व्यवधान उत्पन्न किया जा रहा था, जिसके परिणामस्वरूप दिसंबर, 1949 तक केवल शुक्रवार की नमाजे अदा की जा रही थीं ।

दिसंबर, 1949 तक मस्जिद के प्रयोग और उसमें उपस्थिति के संबंध में दस्तावेजी साक्ष्य को फैज़ाबाद के पुलिस अधीक्षक के तारीख 29 नवंबर, 1949 के पत्र से समर्थन प्राप्त होता है, विनिर्दिष्ट रूप से उन प्रयासों के संदर्भ में, जो मस्जिद के चारों तरफ घेरेबंदी को लेकर किए जा रहे थे, जिससे कि मुस्लिम मस्जिद का परित्याग कर दें । इस पत्र के साथ तारीख 16 दिसंबर, 1949 का एक अन्य पत्र संलग्न है, जो जिला मजिस्ट्रेट द्वारा मुख्य सचिव को मस्जिद की सुरक्षा के संबंध में आशंका व्यक्त करते हुए लिखा गया है ।

307. वाद संख्या 3 को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया गया है । मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का ऊपर विश्लेषण किया गया है, जिससे कि निर्मोही अखाड़ा के निम्नलिखित दावों का संपूर्ण न्यायनिर्णयन किया जा सके :–

(i) मस्जिद की विद्यमानता से इनकार;

(ii) इस बात को दृढ़तापूर्वक कहना कि भीतरी बरामदे का ढांचा मंदिर का ढांचा था, जो उनके अनन्य कब्जे में था; और

(iii) उनके द्वारा तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि की घटना से इनकार किया जाना ।

निर्मोही अखाड़ा अपने प्रकथनों को साबित करने में विफल रहा है । दस्तावेजी साक्ष्य निर्मोही अखाड़ा द्वारा किए गए आक्षेपों को वाद संख्या 5 की पोषणीयता के संबंध में निर्मोही अखाड़ा द्वारा उठाए गए आक्षेपों को विनिर्धारित करने में दस्तावेजी साक्ष्य सुसंगत होंगे (जिसका समर्थन सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड द्वारा किया गया) । क्या निर्मोही अखाड़ा ने इस बात को साबित किया है कि वे भगवान राम की मूर्ति की सेवा में शिबायत थे, यह विवाद्यक वाद संख्या 5 से संबंधित था और इसलिए इस विवाद्यक वाद पर विचार करते समय विचार किया जाएगा । कुछ साक्ष्य, जिन पर ऊपर चर्चा की गई है, भी स्वत्व के प्रश्न पर सुसंगत होंगे और उन पर इसमें निर्णय पारित करते समय समुचित प्रक्रम पर पुनर्विचार किया जाएगा ।

ढ. वाद संख्या 5 : देवता

ढ.1 पक्षों की क्रमबद्धता

308. वाद संख्या 5 प्रथम और द्वितीय वादियों की तरफ से वादमित्र, जिसको तृतीय वादी के रूप में पक्ष बनाया गया था, द्वारा संस्थित कराया गया था । पहले और दूसरे वादी 'भगवान श्रीरामलला विराजमान' और 'स्थान श्रीराम जन्मभूमि, अयोध्या' हैं । तीसरे वादी इलाहाबाद उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री देवकी नंदन अग्रवाल थे । उनकी मृत्यु के परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय के आदेश द्वारा उनके स्थान पर तीसरे वादी को प्रतिस्थापित कर दिया गया था ।

309. पहला प्रतिवादी गोपाल सिंह विशारद (वाद संख्या 1 के वादी) का विधिक प्रतिनिधि है; दूसरा प्रतिवादी वाद संख्या 2 (जिसको बाद में वापस ले लिया गया था) का वादी था; तीसरा प्रतिवादी निर्मोही अखाड़ा

(वाद संख्या 3 का वादी) है; चौथा प्रतिवादी सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड (वाद संख्या 4 का वादी) है; पांचवां और छठा प्रतिवादी अयोध्या और फैज़ाबाद के मुस्लिम निवासी हैं; सातवां, आठवां, नवां और दसवां प्रतिवादी उत्तर प्रदेश राज्य और उसके अधिकारी हैं; ग्यारवां प्रतिवादी अखिल भारतीय हिंदू महासभा का अध्यक्ष है; बारहवां और तेरहवां प्रतिवादी क्रमश: अखिल भारतीय आर्य समाज और अखिल भारतीय सनातन धर्म सभा हैं; चौदहवां प्रतिवादी श्री धरमदास था, जिसको बाबा अभिराम दास के चेले के रूप में वर्णित किया गया और जो उस घटना में अंतर्वलित था, जो तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को घटित हुई थी; पंद्रहवां और सोलहवां प्रतिवादी अयोध्या और फैज़ाबाद के हिंदू निवासी हैं; सत्रहवां प्रतिवादी जिला फैज़ाबाद का निवासी था (जिसका नाम अब काटा जा चुका है); अठारहवां और उन्नीसवां प्रतिवादी महंत गंगा दास और स्वामी गोविंदाचार्य मानस मार्तण्ड हैं; बीसवां प्रतिवादी उमेश चंद्र पांडेय थे, जिन्होंने वाद संख्या 3 में निर्मोही अखाड़े का दावे का विरोध किया था (किंतु उन्होंने कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया) इक्कीसवें प्रतिवादी को 'श्रीराम जन्मभूमि न्यास' के रूप में वर्णित किया गया है, यह एक न्यास है, जिसके प्रबंध न्यासी को श्री अशोक सिंघल के माध्यम से पक्ष बनाया है; बाइसवें से पच्चीसवें प्रतिवादी शिया सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ़ और शियाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति हैं; छब्बीसवां प्रतिवादी जमायतुल उलेमा हिंद, उत्तर प्रदेश का महासचिव है और सत्ताइसवां प्रतिवादी फैज़ाबाद का मुस्लिम निवासी है ।

ढ.2 उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा मामले का प्रतिवाद न किया जाना

310. उत्तर प्रदेश राज्य में (1989 के वाद संख्या 4 में) यह अभिकथित करते हुए यह कथन फाइल किया था कि 'सरकार विवादित संपत्तियों में हितबद्ध नहीं है' और विवादित संपत्तियों के संबंध में अधिकारियों की कार्यवाहियां उनके अधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में की गई सद्भावपूर्ण कार्यवाहियां थीं ।

ढ.3 अभिवचन

311. वाद संख्या 5 में वादपत्र के अभिवचन इस आधार पर

अग्रसर होते हैं कि पहला और दूसरा वादी 'विधिक व्यक्ति हैं और भगवान श्रीराम इस स्थान के प्रधान देवता हैं' । तीसरे वादी को 'वैष्णव हिंदू' के रूप में वर्णित किया गया है । वादपत्र में राम जन्मभूमि को वाद संख्या 1 में फैज़ाबाद के सिविल न्यायाधीश के न्यायालय द्वारा नियुक्त आयुक्त के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए 'शिव शंकर लाल द्वारा तैयार किए गए भवन परिसर के दो स्थल मानचित्रों और उनके साथ संलग्न क्षेत्र, जिसको राम जन्मभूमि के रूप में जाना जाता है', वर्णित किया गया है । उनकी रिपोर्ट के साथ ये स्थल मानचित्र संलग्नक 1, 2 और 3 के रूप में वादपत्र के साथ संलग्न हैं ।

312. वादपत्र में सिविल न्यायालय के समक्ष संस्थित कराए गए पूर्ववर्ती वादों (1950 का वाद संख्या 2, 25, 1959 का वाद संख्या 26 और 1961 का वाद संख्या 12) के इतिहास और धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों का उल्लेख किए जाने के पश्चात् अभिकथित किया गया है कि ये वाद लंबित हैं और इनकी तुरंत सुनवाई की संभावनाएं अत्यंत कम हैं । यह अभिकथित किया गया है कि यद्यपि वादी देवताओं की सेवा और पूजा उचित रूप से की जा रही है, किंतु साथ ही यह भी अभिकथित किया गया कि हिंदू श्रद्धालुओं को एक अवरोध के पीछे से ही दर्शन की अनुज्ञा है । यह भी अभिकथित किया गया है कि वादी देवता और श्रद्धालु वादों के निस्तारण में विलंब, मंदिर के मामलों के प्रबंधन में गिरावट से और पुजारियों और मंदिर के अन्य कर्मचारियों द्वारा श्रद्धालुओं द्वारा चढ़ाए गए चढ़ावे के तथाकथित दुर्विनियोजन से 'अत्यंत अप्रसन्न' हैं । यह भी अभिकथित किया गया कि हिंदू देवता एक नए मंदिर में निवास के इच्छुक हैं, जिसका निर्माण राम जन्मभूमि के विद्यमान ढांचे को हटाए जाने के पश्चात् किया जाना है । वादपत्र के अनुसार रामानंद संप्रदाय के प्रमुख को मंदिर के प्रबंधन की देखभाल और नए मंदिर के निर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त करने के लिए नियुक्त किया गया था । इसी कारणवश तारीख 18 दिसंबर, 1985 को न्यास विलेख निष्पादित किया गया, जिसे उप निबंधक के कार्यालय में रजिस्ट्रीकृत कराया गया । इस न्यास को 'श्रीराम जन्मभूमि न्यास' का नाम दिया गया और इस न्यास में दस न्यासी हैं । इसके अतिरिक्त विश्व हिंदू

परिषद् को अपने मार्ग दर्शक मंडल के द्वारा चार न्यासियों को नामित करना था, जो कर दिया गया है । इसके अलावा पांच न्यासियों को 'भारत के प्रमुख हिंदू नागरिकों' में से नामित किया गया है । उपरोक्त पांच व्यक्तियों में से एक व्यक्ति तीसरा वादी है, जिसको न्यासी के रूप में नामित किया गया है । अभिकथित रूप से राम जन्मभूमि न्यास वादी देवताओं की सेवा, पूजा और अन्य मामलों में प्रत्यक्ष रूप से हितबद्ध है । वादियों ने आगे उपदर्शित किया है कि विद्यमान वाद 'अपर्याप्त हैं' और इन वादों के परिणामस्वरूप विवाद का निपटारा नहीं हो सकता, चूंकि न तो प्रधान देवता, भगवान श्रीराम विराजमान और न ही स्थान श्रीराम जन्मभूमि (दोनों को न्यायिक व्यक्ति के रूप में अभिकथित किया गया है) को पूर्ववर्ती वादों में पक्ष बनाया गया था । इसके अतिरिक्त यह अभिकथित किया गया है कि पूर्ववर्ती वादों के पक्षों में से कुछ पक्ष 'किसी सीमा तक' वादी देवताओं की उपासना पर नियंत्रण अभिप्राप्त करने के द्वारा अपने निजी हित साधने की ईप्सा में अंतर्वलित हैं । इस पृष्ठभूमि में वादियों ने अपनी तरफ से एक वाद संस्थित कराया है ।

313. वादपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि 'स्पष्ट निर्णयज विधि' द्वारा यह सुस्थापित है कि विवादित परिसर के अंतर्गत एक ऐसे स्थान का वर्णन किया गया है, जहां भगवान राम का जन्म हुआ था । दूसरे वादी, जिसको 'स्थान श्रीराम जन्मभूमि' के रूप में वर्णित किया गया है, अभिकथित रूप से उपासना का स्वतंत्र विषय है, जिसकी उपासना श्रद्धालुओं द्वारा भगवान राम के दिव्य भाव को प्रतीकत्व प्रदान करते हुए की जाती है । अतः, यह प्रकथन किया गया है कि राम जन्मभूमि पर स्थित भूमि ने विद्यमान ढांचे के निर्माण या केंद्रीय गुंबद के नीचे मूर्तियों को स्थापित किए जाने के पूर्व ही न्यायिक व्यक्तित्व धारण कर लिया है । वादपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि हिंदू न केवल किसी मूर्ति के स्वरूप या आकार की उपासना करते हैं बल्कि उस दिव्य भाव की भी उपासना करते हैं, जिसका आह्वान प्रतिष्ठापन या प्राण प्रतिष्ठा द्वारा किया जाता है । वादपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि द्वितीय वादी के स्थल पर दिव्य भाव की उपासना देवता के

रूप में की जाती है और इसलिए यह निवेदन किया गया है कि स्थान स्वयमेव ही देवता है । वादपत्र में यह निवेदन किया गया है कि देवता अविनाशी होने के कारण तब तक विद्‌यमान रहते हैं, जब तक स्थान विद्‌यमान रहता है और चूंकि यहां पर स्थान भूमि है, इसलिए भूमि के रूप में देवता विद्‌यमान हैं, चाहे भूमि पर कोई निर्माण हुआ हो या नहीं ।

314. वादपत्र में इस अभिवाक् के समर्थन में फैज़ाबाद के गज़ेटियर के 1928 के संस्करण का अवलंब इस बाबत लिया गया है कि प्राचीन मंदिर, जिसको राम जन्मभूमि मंदिर कहा जाता है, को वर्ष 1528 में बाबर द्‌वारा नष्ट कर दिया गया था और कसौटी के खंभों समेत नष्ट मंदिर की अधिकांश सामग्री से ही मस्जिद का निर्माण किया गया था । फिर भी वादपत्र के अनुसार श्रद्‌धालुओं ने प्रतीकों, जैसेकि अहाता के भीतर राम चबूतरा पर चरण, सीता रसोई और भगवान राम की मूर्ति के माध्यम से भगवान राम के दर्शन करना जारी रखा । वादपत्र में यह निवेदन किया गया है कि इस भवन में कोई प्रवेश नहीं कर सकता था, जब तक कि वह उस क्षेत्र को पार न कर लेता, जहां हिंदू उपासना करते थे । वादपत्र में इस बात को विवादित किया गया है कि क्या कोई मस्जिद इस्लामिक सिद्‌धांतों के अनुसार विधिपूर्वक किसी हिंदू मंदिर के स्थल पर निर्मित की जा सकती है, जो हिंदुओं के उपासना स्थलों द्‌वारा घिरी हुई हो । वादियों के अनुसार देवताओं के पुजारियों ने सदियों तक राम जन्मभूमि पर उपासना करना जारी रखा; अर्थात् वह स्थान देवताओं से संबंधित है और उस स्थान के बाबत कोई विधिमान्य वक्फ़ कभी सृजित नहीं किया गया और न ही किया जा सकता था । वादपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि मुस्लिम निवासियों द्‌वारा कतिपय अवसरों पर अतिचार के बावजूद स्वत्व और कब्जा वादी देवताओं में ही निहित रहा । वादपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि मस्जिद में नमाज अदा नहीं की जाती थी । स्वाधीनता के पश्चात् राम जन्मभूमि के चारों तरफ बनी हुई कब्रों को बैरागियों द्‌वारा तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि को खोद दिया गया था और विवादित भवन के केंद्रीय गुंबद के नीचे भगवान राम की एक मूर्ति सम्यक् रूप से रीति-रिवाजों के साथ स्थापित कर दी गई थी । इसके पश्चात् धारा 145 के अधीन

कार्यवाहियां हुईं जिसमें वादी देवताओं को पक्ष नहीं बनाया गया । वादी देवताओं में निहित मूल स्वत्व के अभिवाक् के अनुकल्प में यह अभिकथित किया गया है कि देवता के कब्जे में रहे हैं और देवताओं के स्वत्व के प्रतिकूल स्वत्व का कोई दावा प्रतिकूल कब्जे द्वारा निर्वापित हो जाता है ।

315. वादपत्र में यह उल्लेख किया गया है कि हिंदू श्रद्धालु विवादित स्थल पर एक मंदिर का निर्माण करने के लिए इच्छुक थे और इस प्रयोजनार्थ तारीख 30 सितंबर, 1989 से 'सक्रिय आंदोलन' आरंभ किए जाने का कार्यक्रम था और साथ ही तारीख 9 नवंबर, 1989 को मंदिर की आधारशिला भी रखी जानी थी । वादपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि निर्मोही अखाड़ा ने वादी-देवताओं की उपासना के प्रबंधन में अपने व्यक्तिगत हित को आगे रखा और उनके प्रतिनिधित्व के लिए कोई उपयुक्त व्यक्ति न होने के कारण तृतीय वादी ने वादमित्र के रूप में वाद संस्थित कराया । वादपत्र में यह प्रकथन किया गया है कि नए मंदिर के निर्माण के आंदोलन को पूर्ण किए जाने में आने वाले किसी व्यवधान को हटाए जाने के लिए विवादित स्थल पर संपूर्ण परिसर 'एकल पहचान' के साथ 'अभिन्न परिसर' गठित करता है । अभिकथित रूप से मुस्लिमों का दावा भीतरी चाहरदीवारी के भीतर स्थित अहाता तक सीमित है ।

वर्ष 1992 में बाबरी मस्जिद के ध्वंस के पश्चात् वादपत्र को ध्वंस के पूर्व, दौरान और पश्चात् की परिस्थितियों से संबंधित प्रकथनों को सम्मिलित किए जाने के प्रयोजनार्थ संशोधित किया गया । वादियों के अनुसार शिबायती अधिकार वापस ले लिए गए थे और संसद् द्वारा अधिनियमित अर्जन अध्यादेश और विधि की अधिनियमिति के पश्चात् कानूनी रिसीवर को प्रदान कर दिए गए थे ।

वाद संख्या 5 में उपरोक्त अभिवचनों के आधार पर दो अनुतोषों की ईप्सा की गई :–

(क) इस बाबत घोषणा कि श्रीराम जन्मभूमि का संपूर्ण

परिसर, जिसको संलग्नक I, II और III में वर्णित किया गया है, वादी-देवताओं से संबंधित हैं; और

(ख) प्रतिवादियों को विद्यमान भवनों और ढांचों का ध्वंस किए जाने और उनको हटाए जाने के पश्चात् श्रीराम जन्मभूमि पर नए मंदिर के निर्माण में मध्यक्षेप करने या बाधा उत्पन्न करने से प्रतिषिद्ध किए जाने के लिए स्थाई व्यादेश ।

ढ.4 लिखित कथन

निर्मोही अखाड़ा

316. निर्मोही अखाड़ा ने वाद संख्या 5 के उत्तर में अपना लिखित कथन यह निवेदन करते हुए फाइल किया कि वादमित्र के माध्यम से संस्थित कराया गया वाद दुर्भावनापूर्ण वाद है और यह 'उत्तर देने वाले प्रतिवादियों के स्वत्व और हित को नुकसान पहुंचाने की युक्ति है । निर्मोही अखाड़ा ने देवताओं के प्रतिनिधित्व के प्रयोजनार्थ तृतीय वादी के रूप में वादमित्र को सुने जाने के अधिकार से इनकार किया है । निर्मोही अखाड़ा ने विधिक व्यक्ति के रूप में द्वितीय वादी की हैसियत से भी विनिर्दिष्ट रूप से इनकार किया । निर्मोही अखाड़ा के अनुसार भगवान श्रीराम वर्तमान में राम जन्मभूमि पर विराजमान हैं, किंतु वे जिस मंदिर में हैं उसको वर्तमान में जन्मभूमि मंदिर कहा जाता है और जिसके प्रभार और प्रबंधन के लिए उन्होंने वाद संख्या 3 को संस्थित कराया है । लिखित कथन के अनुसार इस स्थान से आशय मात्र एक स्थान से है और न कि विधिक व्यक्ति से । लिखित कथन में यह प्रकथन किया गया है कि तृतीय वादी देवता का उपासक नहीं है और वह एक वैष्णव है और उसको देवता या 'तथाकथित स्थान' के प्रतिनिधित्व का अधिकार नहीं है । लिखित कथन में यह अनुरोध किया गया है कि नए मंदिर के निर्माण के लिए 25 करोड़ रुपए की राशि एकत्रित करने का प्रयास किया गया था । निर्मोही अखाड़ा ने अभिकथित किया है कि भगवान राम का जन्मस्थान विवादित स्थान नहीं है और यह स्थान अयोध्या में स्थित है जहां राम जन्मभूमि स्थित है । राम जन्मभूमि मंदिर अभिकथित रूप से विवादित भूमि पर स्थित है, जिसके बाबत मुस्लिम यह दावा करते हैं कि वह एक

मस्जिद है । स्थान राम जन्मभूमि अभिकथित रूप से भगवान राम का जन्मस्थान है, जिसमें संपूर्ण अयोध्या नगर समाविष्ट है । निर्मोही अखाड़ा ने दावा किया है कि वे विवादित मंदिर में स्थापित भगवान राम की मूर्ति के शिबायत हैं और केवल उनको ही मंदिर को नियंत्रित करने, उसका पर्यवेक्षण करने, उसकी मरम्मत कराने और उसका पुनर्निर्माण कराने का अधिकार प्राप्त है । निर्मोही अखाड़ा ने लिखित कथन में यह निवेदन किया है कि निर्मोहियों का वाद वर्ष 1959 में फाइल किया गया था, जबकि राम जन्मभूमि न्यास वर्ष 1985 में 'अखाड़ा के स्वत्व और हित को नुकसान पहुंचाने की स्पष्ट रूप से युक्ति के रूप में अस्तित्व में आया । निर्मोही अखाड़ा ने यह अभिकथन किया है कि भगवान राम की मूर्ति सदैव राम जन्मभूमि मंदिर में स्थापित थी; मंदिर उनसे (निर्मोही अखाड़ा से) संबंधित है और किसी अन्य को नए मंदिर के निर्माण का अधिकार नहीं है । वाद संख्या 5 का विरोध इस आधार पर किया गया है कि वादियों को 'वाद फाइल करने का वास्तविक स्वत्व' प्राप्त नहीं है और यह वाद मंदिर के प्रबंधन में निर्मोहियों के अधिकारों पर अतिक्रमण है । इसलिए निर्मोही अखाड़ा के अनुसार वाद संख्या 5 में वादियों द्वारा उल्लिखित विवादित परिसर निर्मोही अखाड़ा से संबंधित है और वादी निर्मोही अखाड़ा के अधिकार और स्वत्व के विरुद्ध घोषणा की ईप्सा नहीं कर सकते । तद्नुसार निर्मोही अखाड़ा ने वाद संख्या 5 को खारिज किए जाने की प्रार्थना की है ।

निर्मोही अखाड़ा ने अपने अतिरिक्त लिखित कथन में अभिकथित किया है कि बाहरी सहन (बरामदा) पर भगवान राम का 'एक लघु मंदिर स्थित था', जिसमें रामनन्दी बैरागियों के मध्य अभिभावी रीति-रिवाजों के अनुसार नियमित रूप से उपासना की जा रही थी । अभिकथित रूप से इस मंदिर का बाहरी भाग इसके शिबायत के रूप में निर्मोही अखाड़ा के प्रबंधन और प्रभार में रहा, जब तक कि बाहरी भाग को 1982 के नियमित वाद संख्या 239 में तारीख 16 फरवरी, 1982 को कुर्क नहीं किया गया । यह अभिकथित किया गया है कि बाहरी भाग निर्मोही अखाड़ा के कब्जे और प्रबंध में रहा है और राम चबूतरा, जिसका

स्वामित्व निर्मोही अखाड़ा के अधीन है, पर स्थापित भगवान राम की मूर्ति का सुभिन्न विधिक अस्तित्व है । अतिरिक्त लिखित कथन में यह निवेदन किया गया है कि धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट का कुर्की आदेश केवल तीन गुंबदों वाले ढांचे से संबंधित था, जहां निर्मोही अखाड़ा द्‌वारा अभिकथित रूप से भगवान राम की मूर्ति अनादिकाल से स्थापित है और जो सदैव इसके प्रबंधन और कब्जे में रहा है । निर्मोही अखाड़ा द्‌वारा पुन: फाइल किए गए लिखित कथन में यह दावा किया गया है कि राम जन्मभूमि न्यास का गठन अवैध है ।

अखिल भारतीय हिंदू महासभा

317. अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अध्यक्ष ने लिखित कथन यह दावा करते हुए फाइल किया है कि वे श्रीराम जन्मभूमि न्यास के सदस्य के रूप में राम जन्मभूमि मंदिर की सेवा पूजा और अन्य मामलों के प्रति प्रत्यक्षत: समर्पित हैं ।

सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड

318. सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड ने वादी-देवताओं के वाद का विरोध किया है । उन्होंने अपने लिखित कथन में प्रथम और द्‌वितीय वादी की विधिक हैसियत और वादमित्र के रूप में तृतीय वादी की हैसियत को नकारा है । सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के अनुसार बाबरी मस्जिद परिसर के भीतर कोई मूर्ति स्थापित नहीं थी, जब तक कि मूर्ति को तारीख 22-23 दिसंबर, 1949 की रात्रि को चुपके से भीतर नहीं लाया गया । लिखित कथन में प्रधान देवता या 'किसी स्थान' की उपस्थिति से इनकार किया गया है । उन्होंने महंत रघुबर दास द्‌वारा संस्थित कराए गए वर्ष 1885 के वाद के खारिज किए जाने का अवलंब लेते हुए निवेदन किया कि वादी बाबरी मस्जिद के किसी भाग के बाबत यह दावा नहीं कर सकते कि उस भाग ने 'स्थान राम जन्मभूमि' के नाम के द्‌वारा, विशेष रूप से देवता की स्थापना के अभाव में या हिंदू धर्म की मान्यताओं के अनुसार चेतना धर्मरोपण के अभाव में या विधि अनुसार विधिक व्यक्तित्व धारण कर लिया है । इस लिखित कथन में इस अभिकथन से इनकार समाविष्ट है कि बाबरी मस्जिद के स्थल पर कोई मंदिर विद्‌यमान था

या मस्जिद का निर्माण मंदिर को नष्ट किए जाने के पश्चात् उस अभिकथित मंदिर की सामग्री से किया गया । यह प्रकथन किया गया है कि बाबर के शासनकाल के दौरान मस्जिद के निर्माण के समय से इसका प्रयोग सदैव मस्जिद के रूप में ही किया गया है । यह अभिकथित किया गया है कि जब मस्जिद का निर्माण किया गया, तो भूमि राज्य से संबंधित थी और यह दावा भी किया गया कि मस्जिद का निर्माण रिक्त भूमि पर किया गया था । यह भी अभिकथित किया गया है कि राम चबूतरा वर्ष 1857 के आस-पास निर्मित किया गया था । यह भी अभिकथित किया गया है कि मस्जिद के निर्माण के समय से तारीख 23 दिसंबर, 1949 तक मुस्लिमों का कब्जा अबाधित और निरंतर रूप से रहा है और इसलिए उनके कब्जे के विपरीत कोई अधिकार, स्वत्व या हित प्रतिकूल कब्जे द्वारा निर्वापित हो जाता है । लिखित कथन के अनुसार मस्जिद में तारीख 22 दिसंबर, 1949 तक नियमित रूप से नमाज अदा की गई थी और शुक्रवार की नमाज तारीख 16 दिसंबर, 1949 तक अदा की गई । लिखित कथन के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि वादकारण दिसंबर, 1949 में उद्भूत हुआ, जब संपत्ति कुर्क की गई और मुस्लिमों ने मस्जिद में हिंदुओं के पूजा करने के दावे से इनकार किया । इसलिए वाद अभिकथित रूप से परिसीमा द्वारा बाधित है ।

319. पांचवें प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में न्यायालय द्वारा न्यास को सुने जाने के अधिकार से इनकार किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने यह निवेदन भी किया है कि यह परिसर 16वीं शताब्दी में निर्माण के समय से सदैव मस्जिद रहा है और इसका प्रयोग मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा करने के लिए किया जाता था और किसी अन्य प्रयोजन के लिए नहीं । पांचवें प्रतिवादी ने प्रथम और द्वितीय वादियों की विधिक हैसियत से और तृतीय वादी को सुने जाने के अधिकार से इनकार किया । सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड और पांचवे प्रतिवादी द्वारा फाइल किए गए अतिरिक्त लिखित कथन में संशोधित वादपत्र की अंतर्वस्तु से इनकार किया गया है और यह दलील दी गई है कि मूर्तियों के संबंध में दावा उन मूर्तियों को तारीख 6 दिसंबर, 1992 को हटाए जाने के पश्चात् निर्वापित हो गया ।

ढ.5 उच्च न्यायालय द्वारा विरचित विवाद्यक और उन विवाद्यकों पर निकाले गए निष्कर्ष

320. वे विवाद्यक, जिनको वाद में विरचित किया गया और उन विवाद्यकों पर उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को नीचे सूचीबद्ध किया गया है :–

1. क्या प्रथम और द्वितीय वादी न्यायिक व्यक्ति हैं ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान –** मूर्ति संपत्ति धारण के लिए सम्यक् रूप से समर्थ है;

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – सकारात्मक में उत्तर दिया – दोनों वादी अर्थात् वादी संख्या 1 और 2 विधिक व्यक्ति हैं;

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा –** वादियों के पक्ष में निर्णीत किया;

2. क्या देवताओं, जिनको वादपत्र में प्रथम और द्वितीय वादियों के रूप में वर्णित किया गया है, के नाम में वादमित्र के रूप में तृतीय वादी के माध्यम से संस्थित कराया गया वाद पोषणीय नहीं है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान –** न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा दिए गए विनिश्चय का अनुसरण किया;

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वाद को पोषणीय अभिनिर्धारित किया;

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वाद को पोषणीय अभिनिर्धारित किया;

3. (क) क्या प्रश्नगत मूर्ति को तारीख 23 दिसंबर, 1949 को प्रात:काल विवादित भवन (जिसे अब ध्वस्त किया जा चुका है) के केंद्रीय गुंबद के नीचे स्थापित किया गया था, जैसाकि वादी द्वारा वादपत्र के पैरा 27 में अभिकथित किया गया है और सिविल

प्रक्रिया संहिता के आदेश 10, नियम 2 के अधीन अभिलिखित उनके कथन में स्पष्ट किया गया है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान –** मूर्तियों को सर्वप्रथम तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि के दौरान मस्जिद के भीतर रखा गया था;

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – सकारात्मक में उत्तर दिया;

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा –** सकारात्मक में उत्तर दिया;

3. (ख) क्या एक ही मूर्ति को मंडप के नीचे चबूतरे पर एक ही स्थान पर पुनर्स्थापित किया गया था ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान –** न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया;

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – सकारात्मक में उत्तर दिया;

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – सकारात्मक में उत्तर दिया;

3. (ग) क्या मूर्तियों को तारीख 14 अगस्त, 1989 और 15 नवंबर, 1991 के न्यायालय आदेशों के अतिक्रमण में तारीख 6 दिसंबर, 1992 को या उसके पश्चात् विवादित स्थल पर रखा गया था ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान –** न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया;

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – नकारात्मक में उत्तर दिया;

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा –** वादियों के पक्ष में निर्णीत किया;

3. (घ) यदि पूर्वोक्त विवाद्यक का उत्तर सकारात्मक में दिया गया है, तो क्या इस प्रकार से रखी गई मूर्तियों को आज भी देवता की हैसियत प्राप्त है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान –** न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया;

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – सकारात्मक में उत्तर दिया;

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा –** सकारात्मक में उत्तर दिया;

4. क्या प्रश्नगत मूर्तियां अनादिकाल से तारीख 6 दिसंबर के पूर्व तक शिखर के नीचे विद्यमान रही थीं, जैसाकि निर्मोही अखाड़ा (प्रतिवादी संख्या 3) के अतिरिक्त लिखित कथन के पैरा 44 में अभिकथित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान –** मूर्तियों को सर्वप्रथम तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को मस्जिद में रखा गया था;

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – नकारात्मक में उत्तर दिया ; केंद्रीय गुंबद के नीचे मूर्तियां तारीख 6 दिसंबर, 1992 के पहले से विद्यमान थीं, किंतु उनको वहां पर तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि के दौरान रखा गया था ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा –** मूर्तियां 22/23 दिसंबर, 1949 के पूर्व केंद्रीय गुंबद के नीचे विद्यमान नहीं थीं ।

5. क्या प्रश्नगत संपत्ति को वादपत्र में उचित प्रकार से पहचाना गया और वर्णित किया गया है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान –** मस्जिद के निर्माण के लिए किसी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया था । बाबर के शासनकाल के दौरान जब तक मस्जिद का निर्माण नहीं हुआ, तब तक इस परिसर को न तो भगवान राम का जन्मस्थान माना जाता था और न ही विश्वास किया जाता था ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – संपत्ति की पहचान या वर्णन में कोई संदिग्धता नहीं है ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा –** वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

6. क्या तृतीय वादी, वादी संख्या 1 और 2 का प्रतिनिधित्व उनके वादमित्र के रूप में करने का हकदार नहीं है और क्या इस आधार पर वाद सक्षम नहीं है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान –** न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादियों के पक्ष में नकारात्मक में उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा –** वादियों के पक्ष में निर्णीत किया ।

7. क्या निर्मोही अखाड़ा (तृतीय प्रतिवादी) अकेले ही प्रथम और द्वितीय वादियों का प्रतिनिधित्व करने का हकदार है और क्या वाद इस आधार पर सक्षम नहीं है, जैसाकि निर्मोही अखाड़ा के अतिरिक्त लिखित कथन के पैरा 49 में अभिकथित किया गया है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादियों के पक्ष में और निर्मोही अखाड़ा के विरुद्ध उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वादियों के पक्ष में और निर्मोही अखाड़ा के विरुद्ध उत्तर दिया ।

8. क्या प्रतिवादी निर्मोही अखाड़ा विवादित ढांचे में स्थापित भगवान श्रीराम का 'शिबायत' है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – निर्मोही अखाड़ा के विरुद्ध उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – निर्मोही अखाड़ा के विरुद्ध उत्तर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि निर्मोही अखाड़ा प्रथम और द्वितीय वादियों के प्रतिनिधित्व के प्रयोजनार्थ अक्षम है ।

9. क्या विवादित ढांचा

एक मस्जिद थी, जिसे बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता था ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मस्जिद का निर्माण बाबर के आदेशों के अंतर्गत किया गया था । मुस्लिम वर्ष 1934 तक नियमित रूप से नमाज अदा करते रहे और तत्पश्चात् तारीख 22 दिसंबर, 1949 तक केवल शुक्रवार की नमाजे अदा की गईं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादियों के विरुद्ध उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के विरुद्ध और वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

10. क्या विवादित ढांचे को वादपत्र के पैरा 24 में समाविष्ट अभिकथनों के आधार पर मस्जिद माना जा सकता था ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मस्जिद विधिमान्य रूप से मस्जिद थी ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – सकारात्मक में उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – मस्जिद का निर्माण मंदिर ध्वस्त करने के पश्चात् किया गया था ।

11. क्या वादपत्र के पैरा 25 में किए गए प्रकथनों के आधार पर विवादित ढांचे को मस्जिद का स्वरूप दिए जाने के संबंध में कोई विधिमान्य वक्फ़ सृजित नहीं किया गया था ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मस्जिद विधिमान्य रूप से मस्जिद है ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – सकारात्मक में उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – विवादित संपत्ति के संबंध में कोई विधिमान्य वक्फ़ सृजित नहीं किया गया था ।

12. इस विवाद्यक को तारीख 23 फरवरी, 1996 के आदेश द्वारा काट दिया गया !

13. क्या वाद परिसीमा द्वारा बाधित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं है ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं है ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं है ।

14. क्या विवादित ढांचा, जिसके बाबरी मस्जिद होने का दावा किया गया है, का निर्माण उसके स्थल पर स्थित जन्मस्थान मंदिर को ध्वस्त किए जाने के पश्चात् किया गया था ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मस्जिद के निर्माण के लिए किसी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया । बाबर के शासनकाल के दौरान जब तक मस्जिद का निर्माण चलता रहा, तब तक इस परिसर के बारे में यह विश्वास नहीं किया जाता था कि यह भगवान राम का जन्मस्थान है ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – सकारात्मक में उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के विरुद्ध और वादियों के पक्ष में निर्णीत किया ।

15. क्या विवादित ढांचा, जिसके बाबरी मस्जिद होने का दावा किया गया है, का प्रयोग मुस्लिमों द्वारा वर्ष 1528 में उसके अभिकथित निर्माण से तारीख 22 दिसंबर, 1949 तक नियमित रूप से नमाज अदा किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाता था, जैसाकि प्रतिवादी संख्या 4 और 5 द्वारा अभिकथित किया गया है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – मुस्लिम वर्ष 1934 तक मस्जिद में नियमित रूप से नमाज अदा कर रहे थे । तत्पश्चात् तारीख 22 दिसंबर, 1949 तक केवल शुक्रवार की नमाजें अदा की जाती थीं ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – कम से कम वर्ष 1860 से भीतरी बरामदे में नमाज अदा की जाती थी । अंतिम बार नमाज तारीख 16 दिसंबर, 1949 को अदा की गई थी ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वाद संख्या 4 के विवाद्यक संख्या 1-ख(ग), 2, 4, 12, 13, 14, 15, 19(क), 19(ख), 19(ग), 27 और 28 के साथ संबंध, जिनको सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के विरुद्ध निर्णीत किया गया ।

16. क्या वादी संख्या 1 और 2 का स्वत्व, यदि कोई हो, निर्वापित हो गया है, जैसाकि प्रतिवादी संख्या 4 के लिखित कथन के पैरा 25 में अभिकथित किया गया है । यदि ऐसा है, तो क्या वादी संख्या 1 और 2 ने प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वत्व पुनः अर्जित कर लिया है, जैसाकि वादपत्र के पैरा 29 में अभिकथित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – वर्ष 1855 के पूर्व दोनों पक्ष संयुक्त रूप से कब्जे में थे और इसलिए प्रतिकूल कब्जे के विवाद्यक को निर्णीत करने की कोई आवश्यकता नहीं थी ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – प्रथम और द्वितीय वादियों का स्वत्व कभी निर्वापित नहीं हुआ ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वाद संख्या 4 के विवाद्यक संख्या 1-ख(ग), 2, 4, 12, 13, 14, 15, 19(क), 19(ख), 19(ग), 27 और 28 के साथ संबंध, जिनको सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के विरुद्ध निर्णीत किया गया ।

17. यह विवाद्यक तारीख 13 फरवरी, 1996 के आदेश द्वारा काट दिया गया ।

18. क्या वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 द्वारा बाधित है, जैसाकि प्रतिवादी संख्या 3 के अतिरिक्त लिखित कथन के पैरा 42, प्रतिवादी संख्या 4 के लिखित कथन के पैरा 47 और प्रतिवादी संख्या 5 के लिखित कथन के पैरा 62 में अभिकथित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – प्रतिवादी संख्या चार, पांच और छह के विरुद्ध नकारात्मक में उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वादियों के पक्ष में और प्रतिवादियों के विरुद्ध उत्तर दिया ।

19. क्या वाद आवश्यक पक्षों के असंयोजन के कारण दूषित है, जैसाकि अभिवचन प्रतिवादी संख्या 3 के अतिरिक्त लिखित कथन के पैरा 43 में किए गए हैं ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – नकारात्मक में उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वाद को पोषणीय अभिनिर्धारित किया ।

20. क्या अभिकथित न्यास, जो प्रतिवादी संख्या 21 है, प्रतिवादी संख्या 3 के लिखित कथन के पैरा 47 में अभिकथित तथ्यों और आधारों पर व्यर्थ है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – कोई उत्तर नहीं दिया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – कोई उत्तर नहीं दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

21. क्या प्रश्नगत मूर्तियों को देवता माना जा सकता है, जैसाकि प्रतिवादी संख्या 4 के लिखित कथन के पैरा 1, 11, 12, 21, 22, 27 और 41 और प्रतिवादी संख्या 5 के लिखित कथन के पैरा 1 में अभिकथित किया गया है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्‌वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड और प्रतिवादी संख्या 5 के विरुद्‌ध उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड और प्रतिवादी संख्या 5 के विरुद्‌ध उत्तर दिया ।

22. क्या प्रश्नगत परिसर या उसका कोई भाग परंपरा, विश्वास और आस्था द्‌वारा भगवान राम का जन्मस्थान है, जैसाकि वादपत्र के पैरा 19 और 20 में अभिकथित है ? यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न तो मस्जिद के निर्माण के लिए मंदिर को ध्वस्त किया गया और न ही, जब तक कि मस्जिद का निर्माण पूर्ण नहीं हो गया, इस परिसर को भगवान राम का जन्मस्थान प्रतीत किया गया या ऐसा कोई विश्वास किया गया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – भगवान राम के

जन्मस्थान में, जैसाकि हिंदुओं द्वारा विश्वास किया जाता है और पूजा की जाती है, विवादित परिसर के भीतरी बरामदे में तीन गुंबदों वाले ढांचे के केंद्रीय गुंबद के नीचे वाला स्थान आच्छादित है ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वाद संख्या 4 में विवाद्यक संख्या 1, 1(क), 1(ख), 1ख, 1(ख), 11, 19(घ), 19(ङ) और 19(च) के साथ संबद्ध । सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के विरुद्ध निर्णीत किया गया ।

23. क्या फैज़ाबाद के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में महंत रघुबर दास द्वारा फाइल किए गए 1885 के वाद में पारित निर्णय वादियों पर विबंधन और पूर्व आदेश के सिद्धांतों के उपयोजन द्वारा बाध्यकारी है, जैसाकि प्रतिवादी संख्या 4 और 5 द्वारा अभिकथित किया गया है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 आकर्षित नहीं होती, चूंकि वास्तव में 1885 के वाद में कुछ भी निर्णीत नहीं हुआ ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – नकारात्मक में उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

24. क्या वादग्रस्त परिसर में स्थापित अभिकथित वादी-देवता की उपासना अनादिकाल से की जा रही है, जैसाकि वादपत्र के पैरा 25 में अभिकथित है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न तो मस्जिद के निर्माण के लिए किसी मंदिर को ध्वस्त किया गया और जब तक मस्जिद का निर्माण नहीं हो गया था, तब तक न तो परिसर को भगवान राम का जन्मस्थान प्रतीत किया गया या इस बाबत विश्वास किया गया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – प्रथम और द्वितीय वादियों की उपासना अनादिकाल से की जा रही है – विवाद्यक का उत्तर सकारात्मक में दिया गया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वाद संख्या 4 के विवाद्यक संख्या 1-ख(ग), 2, 4, 12, 13, 14, 15, 19(क), 19(ख), 19(ग), 27 और 28 के साथ संबद्ध । इस विवाद्यक का उत्तर सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के विरुद्ध दिया गया ।

25. क्या 1945 के वाद संख्या 29 में पारित तारीख 30 मार्च, 1946 का निर्णय और डिक्री वादियों पर बाध्यकारी नहीं है, जैसाकि वादियों द्वारा अभिकथित किया गया है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी वाद के पक्ष नहीं थे और इसलिए यह निर्णय उनके ऊपर बाध्यकारी नहीं है ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वादियों के पक्ष में निर्णीत किया ।

26. क्या वाद सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के अधीन सूचना के अभाव में दूषित है, जैसाकि प्रतिवादी संख्या 4 और 5 द्वारा अभिकथित किया गया है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

27. क्या प्रतिवादी संख्या 4 और 5 द्वारा वाद में किए गए

अभिवाक् सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के अधीन सूचना के अभाव में दूषित होने के कारण किए जा सकते हैं ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

28. क्या वाद 1960 के उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम की धारा 65 के अधीन सूचना के अभाव में दूषित है, जैसाकि प्रतिवादी संख्या 4 और 5 द्वारा अभिकथित किया गया है यदि ऐसा है, तो इसके प्रभाव ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – यह उपबंध लागू नहीं होता ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वादियों के पक्ष में निर्णीत किया ।

29. क्या वादी फैज़ाबाद के मुंसिफ सदर के न्यायालय द्वारा 1978 का वाद संख्या 57 (भगवान श्रीरामलला **बनाम** राज्य**) खारिज कर दिए जाने के कारण वर्तमान वाद को फाइल करने से प्रवारित हैं ।**

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वादियों के पक्ष में उत्तर दिया ।

30. वादी या उनमें से कोई किस अनुतोष, यदि कोई हो, के लिए हकदार है ?

(i) **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को अंगीकृत किया ।

(ii) **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वाद पैरा 45-66 में समाविष्ट निर्देशों के अनुसार भागत: डिक्री किया गया ।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा** – वादियों को अनुतोष के लिए हकदार अभिनिर्धारित किया गया और वाद को डिक्री किया ।

321. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने वाद में निम्नलिखित अनुतोष प्रदान किया :–

"(i) यह घोषित किया जाता है कि तीन गुंबदों वाले ढांचे के केंद्रीय गुंबद द्वारा आच्छादित क्षेत्र अर्थात् विवादित ढांचा हिंदुओं की आस्था और विश्वास के अनुसार भगवान राम जन्मस्थान देवता और भगवान राम का जन्मस्थान होने के नाते वादियों (वाद संख्या 5) से संबंधित है और इसमें प्रतिवादियों द्वारा किसी भी प्रकार से व्यवधान या मध्यक्षेप नहीं किया जाएगा । इस क्षेत्र को इस निर्णय के संलग्न साथ में एए बीबी सीसी डीडी अक्षरों द्वारा दर्शित किया गया है ।

(ii) परिशिष्ट 7 [उपरोक्त (i) को अपवर्जित करते हुए] में बी सी डी. एल. के. जे. एच. जी. अक्षरों द्वारा दर्शित भीतरी बरामदे के भीतर का क्षेत्र दोनों समुदायों अर्थात् हिंदुओं (यहां पर वाद संख्या 5 के वादी) और मुस्लिमों के सदस्यों से संबंधित है, चूंकि इसका उपयोग दोनों के द्वारा दशकों और सदियों से किया जा रहा था । तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस निर्देश के अधीन वाद संख्या 5 के वादियों के अंश के प्रयोजनार्थ क्षेत्र, जो उपरोक्त (i) द्वारा आच्छादित है, को भी अपवर्जित किया जाएगा ।

(iii) बाहरी बरामदे में ढांचों अर्थात् राम चबूतरा (परिशिष्ट 7

में ईई एफएफ जीजी एचएच), सीता रसोई (परिशिष्ट 7 में एमएम एनएन ओओ पीपी) और भंडार (परिशिष्ट 7 में आईआई जेजे केके एलएल) को निर्मोही अखाड़ा (प्रतिवादी संख्या 3) का अंश घोषित किया जाता है और वे (निर्मोही अखाड़ा) किसी अन्य व्यक्ति की अनुपस्थिति में उसके कब्जे के लिए बेहतर अधिकार के साथ हकदार होंगे ।

(iv) बाहरी बरामदे (परिशिष्ट 7 में ए. जी. एच. जे. के. एल. ई. एफ.) [सिवाय उसके जो उपरोक्त (iii) द्वारा आच्छादित है] के भीतर खुले क्षेत्र को निर्मोही अखाड़ा (प्रतिवादी संख्या 3) और वादियों (वाद संख्या 5) द्वारा उपयोग किया जाएगा, चूंकि इसका प्रयोग दोनों स्थानों पर सामान्यतया हिंदुओं द्वारा उपासना के प्रयोजनार्थ किया जाता रहा है ।

(iv-क) तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि मुस्लिम पक्षों का अंश परिसर के संपूर्ण क्षेत्र के एक तिहाई (1/3) से न्यून नहीं होगा और यदि आवश्यक हुआ तो उनको बाहरी बरामदे का कुछ क्षेत्र दिया जा सकता है । यह भी स्पष्ट किया जाता है कि यदि माप और सीमांकन द्वारा विभाजन करते हुए विभिन्न पक्षों के अंश के संबंध में कुछ लघु समायोजन किए जाने की आवश्यकता प्रतीत होती है, तो प्रभावित पक्ष की क्षतिपूर्ति उस भूमि से अपेक्षित भूमि आबंटित किए जाने के द्वारा की जा सकती है, जो भारत सरकार द्वारा अर्जित की जा चुकी है ।

(v) वह भूमि, जिसे 1993 के अयोध्या अधिनियम के अंतर्गत अर्जित किया गया था और भारत सरकार के पास पक्षों, जो संपत्ति के बेहतर उपभोग के लिए वाद में सफल हुए हैं, को उपलब्ध कराए जाने के लिए उपलब्ध है, उपरोक्त संबद्ध पक्षों को इस प्रकार से उपलब्ध कराई जाएगी कि समस्त तीनों पक्ष एक दूसरे के अधिकारों में व्यवधान उत्पन्न किए बिना लोगों के आवागमन के लिए पृथक् प्रवेश हेतु उस क्षेत्र का उपयोग कर सकें, जिसके लिए वे हकदार हैं ।

इस प्रयोजनार्थ संबद्ध पक्ष भारत सरकार की शरण में जा सकते हैं, जो उपरोक्त निर्देशों और जैसाकि डा. इस्माइल फारुकी (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में समाविष्ट निर्देशों के अनुसार कार्य करेगी ।

(vi) डिक्री, जो भागत: प्रारंभिक और भागत: अंतिम है, उस सीमा तक जैसाकि उपरोक्त (i से v) में कहा गया है, पारित की जाती है । वाद संख्या 5 को उपरोक्त सीमा तक भागत: डिक्री किया जाता है । पक्षों को स्वतंत्रता है कि वे लखनऊ स्थित अयोध्या न्यायपीठ के विशेष कार्य अधिकारी या लखनऊ स्थित लखनऊ न्यायपीठ के रजिस्ट्रार के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करने के द्वारा को विवादित संपत्ति को माप और सीमांकन के द्वारा वास्तविक विभाजन के लिए अपने सुझाव फाइल करें, जैसा भी मामला हो ।

(vii) पक्ष विवादित संपत्ति के संबंध में यथास्थिति, जैसीकि आज विद्यमान है, तीन माह की अवधि तक या जब तक कि अन्यथा निर्देर्शित न कर दिया जाए, जो पहले हो, बनाए रखेंगे ।"

न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने निम्नलिखित निर्देश जारी किया :

"तद्नुसार, पक्षों के तीनों समूहों अर्थात् मुस्लिम, हिंदू और निर्मोही अखाड़े में से प्रत्येक को उपासना के प्रयोग और प्रबंधन के प्रयोजनार्थ विवादग्रस्त संपत्ति/परिसर के एक तिहाई सीमा तक संयुक्त स्वत्व धारक घोषित किया जाता है, जैसाकि वाद संख्या 1 में न्यायालय द्वारा नियुक्त प्लीडर/आयुक्त श्री शिवशंकर लाल द्वारा तैयार किए गए नक्शा योजना-1 में ए बी सी डी ई एफ अक्षरों द्वारा वर्णित किया गया है । इस प्रयोजनार्थ एक आरंभिक डिक्री तैयार की जाती है ।

तथापि, आगे यह घोषित किया जाता है कि केंद्रीय गुंबद के नीचे वाला भाग, जहां वर्तमान में अस्थायी मंदिर में मूर्ति रखी हुई है, अंतिम डिक्री बनाते समय हिंदुओं को आबंटित किया जाएगा ।

आगे यह निर्देशित किया जाता है कि निर्मोही अखाड़े के उस भाग को सम्मिलित करते हुए वह अंश आबंटित किया जाएगा, जिसको उक्त नक्शे में राम चबूतरा और सीता रसोई शब्दों द्वारा दर्शित किया गया है ।

आगे यह स्पष्ट किया जाता है कि यद्यपि समस्त तीनों पक्षों के बारे में यह घोषित किया गया है कि उनमें से प्रत्येक को एक तिहाई अंश प्राप्त होगा, तथापि, यदि एकदम सटीक भाग आबंटित करते हुए उस अंश में कुछ मामूली समायोजन करने पड़ें तो वे किए जाएंगे और उन समायोजनों के कारण प्रतिकूल रूप से प्रभावित पक्ष को संलग्न भूमि, जिसको केंद्रीय सरकार द्वारा अर्जित किया गया है, का कुछ भाग आबंटित किए जाने के द्वारा क्षतिपूर्ति की जा सकती है ।

पक्षों को यह स्वतंत्रता है कि वे तीन माह के भीतर माप और सीमांकन द्वारा वास्तविक विभाजन के लिए अपने सुझाव प्रस्तुत करें ।"

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने वादियों का वाद निम्नलिखित शब्दों में डिक्री किया

"'वादियों' का वाद मामूली लागत के साथ डिक्री किया जाता है । एतदद्वारा यह घोषणा की जाती है कि अयोध्या स्थित श्रीराम जन्मभूमि का संपूर्ण परिसर, जैसाकि वादपत्र के संलग्नक संख्या 1 और 2 में वर्णित और चित्रित किया गया है, वादी संख्या 1 और 2 देवताओं से संबंधित है । प्रतिवादियों को वादपत्र में निर्दिष्ट अयोध्या स्थित राम जन्मभूमि के मंदिर के निर्माण में मध्यक्षेप करने से या कोई एतराज करने से या व्यवधान उत्पन्न करने से स्थायी रूप से निषिद्ध किया जाता है ।"

ढ.6 शिबायत : वाद फाइल करने के अनन्य अधिकार

शिबायत की भूमिका और स्थिति

322. न्यायालय किसी हिंदू देवता की मूर्ति को किसी वसीयतकर्ता

द्वारा दर्शित पवित्र उद्देश्य के लिए भौतिक अवतार मानते हुए मान्यता प्रदान करते हैं । न्यायिक व्यक्तित्व भी किसी स्वयं-भू देवता को, जो स्वयमेव प्रकृति द्वारा किया गया प्रकटीकरण है, प्रदान किया जाता है । मूर्ति न्यायिक व्यक्ति होती है, जिसमें बंदोबस्ती वाली संपत्ति का स्वत्व निहित होता है । मूर्ति संपत्ति के कब्जे का उपभोग उसी प्रकार से नहीं करती, जैसे कोई प्राकृतिक व्यक्ति करता है । संपत्ति आदर्श भाव में केवल मूर्ति में निहित होती है । उस मूर्ति को किसी मानवीय अधिकरण के द्वारा कार्य करना चाहिए, जो उसकी संपत्तियों का प्रबंधन करेगा, उपासना के साथ सहबद्ध अनुष्ठानों के निर्वहन का इंतजाम करेगा और अन्य बातों के साथ-साथ मूर्ति की तरफ से कार्यवाहियां फाइल करते हुए बंदोबस्ती के संरक्षण के लिए आवश्यक कार्रवाई करेगा । शिबायत वह मनुष्य होता है, जो इन सभी भूमिकाओं का निर्वहन करता है ।

323. निर्मोही अखाड़े ने वाद संख्या 3 इस आधार पर संस्थित कराया है कि वह विवादित स्थल पर भगवान राम के देवता का शिबायत है । निर्मोही अखाड़ा शिबायत है या नहीं, यह प्रश्न अधिकारों के विनिर्धारण पर महत्वपूर्ण प्रभाव रखता है, अर्थात् वाद संख्या 3 और 5 के पक्षों के मध्य इस विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए यह आवश्यक है कि हमारी विधि में शिबायत की स्थिति का विश्लेषण किया जाए ।

324. पूर्ववर्ती विनिश्चय प्रिवी कौंसिल द्वारा **पोसुन्नो कुमारी देबया** बनाम **गोलाब चंद बाबू**[1] वाले मामले में दिया गया था । इस मामले में मूर्ति के शिबायतों द्वारा उनके तत्काल पूर्ववर्ती के विरुद्ध दो निष्पादन डिक्रियों, जिनके द्वारा संपत्ति के विक्रय के लिए निर्देशित किया गया था, को अपास्त कराए जाने के प्रयोजनार्थ वाद संस्थित कराया गया था । प्रिवी कौंसिल ने इस प्रश्न का विश्लेषण करते हुए कि क्या किसी शिबायत की कार्रवाई पश्चात्वर्ती शिबायतों पर बाध्यकारी होती है, न्यायमूर्ति एम. ई. स्मिथ ने निर्णय पारित करते हुए अभिनिर्धारित किया :–

> "इसका अर्थ यह होगा कि वह व्यक्ति, जिसको कोई कार्य सौंपा गया, को आवश्यक रूप से वे कार्य करने के लिए सशक्त

---

[1] (1875) 14 एल बैंगलोर ला रिपोर्ट 450.

होना चाहिए, जो मूर्ति की सेवा, उनके लाभ और उनकी संपत्ति के परिरक्षण के लिए न्यूनतम उस सीमा तक अपेक्षित हो, जैसेकि किसी शिशु उत्तराधिकारी की सेवा, उसके लाभ और उसकी संपत्ति की परिरक्षण के लिए उसके प्रबंधक से अपेक्षित होता है । यदि ऐसा नहीं होता, तो मूर्ति की संपदा नष्ट या बरबाद हो जाएगी और उनकी उपासना उनके परिरक्षण और खर्चों इत्यादि के लिए आवश्यक निधियों के अभाव में बाधित हो जाएगी ।"

प्रिवी कौंसिल ने उपरोक्त उद्धरण में शिबायत की संकल्पना को संक्षेप में उसके वास्तविक कार्यों और प्रयोजन को रेखांकित किया । चूंकि समर्पित संपत्ति आदर्श भाव में मूर्ति में निहित होती है, इसलिए शिबायत उसके प्रबंधन को सौंपा जाता है । मूर्ति संपत्ति के लाभ और परिरक्षण के लिए अपेक्षित कार्रवाई व्यक्तिगत रूप से नहीं कर सकती । मूर्ति को आवश्यक रूप से किसी मानवीय अभिकर्ता के माध्यम से ही कार्य करना होता है और किसी कारणवश मूर्ति के प्रबंधक को विधि द्वारा शिबायत की हैसियत प्रदान की जाती है । विधि मूर्ति के साथ सहबद्ध अधिकारों और कर्तव्यों के संरक्षण को सुकर बनाने के लिए उसके विधिक व्यक्तित्व को मान्यता प्रदान करती है । शिबायत का नैसर्गिक व्यक्तित्व वह मानवीय अभिकरण होता है, जिसके माध्यम से मूर्ति की आवश्यकताओं और समस्याओं का निपटारा किया जाता है ।

325. प्रिवी कौंसिल द्वारा वर्ष 1875 में प्रतिपादित विधि को वर्ष 1979 में इस न्यायालय द्वारा दिए गए एक विनिश्चय में दोहराया गया । **प्रोफुल्ला कोरोन रिक्विटै** बनाम **सत्या कोरोन रिक्विटै**[1] वाले मामले में यह प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ कि क्या संस्थापक का यह आशय था कि शिबायत की हैसियत किसी ऐसे व्यक्ति को प्रदान की जाए, जिसको उसकी वसीयत में न्यासी के रूप में पदनामित किया गया हो । न्यायमूर्ति आर. एस. सरकारिया ने इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

"20. ... किसी मूर्ति को समर्पित संपत्ति आदर्श भाव में केवल

[1] (1979) 3 एस. सी. सी. 409.

उस मूर्ति में निहित होती है; अर्थात् उसकी आवश्यकताओं के लिए उसकी संपत्ति का कब्जा और प्रबंधन किसी मानवीय अभिकर्ता को सौंपा जाना चाहिए । किसी मूर्ति के अभिकर्ता को उत्तर भारत में शिबायत कहा जाता है । शिबायत के विधिक लक्षण को संक्षेप में और सटीक भाषा में परिभाषित नहीं किया जा सकता । व्यापक रूप से वर्णित करते हुए वह मूर्ति का मानवीय सेवक और संरक्षक होता है, वह मूर्ति का पृथ्वी पर प्रवक्ता होता है, उसका प्राधिकृत प्रतिनिधि होता है, जिसको उसके समस्त सामयिक मामलों पर कार्रवाई करने और उसकी संपत्ति का प्रबंधन करने का अधिकार प्राप्त होता है ।"

326. शिबायतों के रूप में किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के किसी समूह को मान्यता उनको देवता के मामलों के प्रबंधन का अधिकार प्रदान किए जाने का सारभूत अधिकार है । शिबायत की हैसियत का आवश्यक लक्षण देवता की मूर्ति की तरफ से कार्रवाई लाने और उनकी संपत्तियों को उस कार्रवाई के परिणाम के साथ संलग्न करने का अधिकार है । वह प्रयोजन जिसके लिए मूर्ति को किसी पवित्र प्रयोजन के तात्विक मूर्तरूप के रूप में विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है, मानवीय अभिकर्ता, जो शिबायत होता है, की कार्यवाहियों के द्वारा संरक्षित होता है और महसूस किया जाता है । शिबायत मूर्ति और उसकी संपत्तियों के संबंध में दानदाता के उद्देश्य को पूर्ण करने की शक्ति और कर्तव्य के साथ न्यासित होता है । अधिसंख्य मामलों में शिबायत को समर्पण विलेख, जिसके द्वारा संपत्ति को किसी मूर्ति को प्रदान किया जाता है, के निबंधनों के अनुसार नियुक्त किया जाता है । विधि इसी संपत्ति के संरक्षण के लिए या तो दानदाता या किसी ऐसे व्यक्ति को मान्यता प्रदान करती है, जिसको शिबायत के रूप में बंदोबस्ती विलेख में नामित किया जाता है । विधि ने अभिव्यक्त रूप से नियुक्त किए गए या पहचाने गए शिबायत की अनुपस्थिति में मूर्ति की संपत्तियों का संरक्षण वस्तुतः शिबायत को मान्यता प्रदान किए जाने के द्वारा सुनिश्चित किया है । जहां कोई व्यक्ति देवता के मामलों के प्रबंधन में संपूर्ण और निरंतर रूप से अनन्यतः और अबाधित रूप से संलग्न है, तो ऐसे व्यक्ति

को शिबायत के रूप में विधिक स्वत्व के अधिकारों की अनुपस्थिति के बावजूद मान्यता प्रदान की जा सकती है । इसका उल्लेख निर्णय के अनुक्रम में किया जाएगा ।

327. हिंदू विधि में शिबायत की स्थिति इंग्लिश विधि में न्यासी की स्थिति से सर्वथा भिन्न है । प्रिवी कौंसिल के समक्ष **विद्या वारुथी तीर्थ** बनाम **बालूसामी अय्यर**[1] वाले मामले में यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या 'भरोसे में दिया' शब्दों और 'न्यासी' शब्द, जैसेकि 1908 के परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 134 में विद्यमान हैं, उन संपत्तियों के संबंध में लागू होते हैं, जिनकी बंदोबस्ती किसी हिंदू मठ के महंत के पक्ष में की जाती है । प्रिवी कौंसिल ने इस दलील को अस्वीकृत कर दिया कि इंग्लिश विधि के अधीन बंदोबस्ती वाली संपत्तियों का प्रबंधन करने वाले व्यक्ति न्यासियों की स्थिति में होते हैं । इस मामले में निर्णय पारित करते हुए न्यायमूर्ति अमीर अली ने अभिनिर्धारित किया:–

> "यहां इस बात का भी स्मरण रखा जाना चाहिए कि कोई 'न्यास' उस भाव में, जिसमें इस अभिव्यक्ति का इंग्लिश विधि में प्रयोग किया जाता है, शुद्ध और सरल हिंदू प्रणाली में अज्ञात है । हिंदू धर्मनिष्ठा को मंदिरों और प्रत्येक प्रकार की धार्मिक संस्थाओं में स्थापित मूर्तियों और पवित्र छवियों, जिनको विभिन्न नामों द्वारा जाना जाता है और यह माना जाता है कि उनको 'विधिक' हैसियत प्राप्त है, को उपहार समर्पित करने में अभिव्यक्ति प्राप्त होती है और उनको उस नाम से उपहार समर्पित किए जाते हैं ... जब उपहार प्रत्यक्षत: किसी मूर्ति या किसी मंदिर को समर्पित किए जाते हैं, तो उस उपहार को पूर्ण किए जाने के प्रयोजनार्थ की जाने वाली प्रथा को आवश्यकत: मानवीय अभिकरण द्वारा प्रभावित किया जाता है । इस संस्था को चाहे जिस नाम से पुकारा जाए, यही संस्था, संस्था की मूर्ति का प्रबंधक और संरक्षक होती है । इंग्लिश भाव में वह संपत्ति किसी भी स्थिति में उस संस्था को अंतरित नहीं होती या उस संस्था में निहित नहीं होती और न ही

[1] ए. आई. आर. 1922 प्रिवी कौंसिल 123.

वह संस्था 'न्यासी' होती है, यद्यपि उस संस्था में निहित बाध्यताओं और कर्तव्यों को दृष्टि में रखते हुए वह 'न्यासी' सामान्य भाव में कुप्रबंधन के लिए उत्तरदायी होता है... इसका अर्थ यह होगा कि किसी भी नाम से प्रबंधक या किसी वरिष्ठ द्वारा किए गए अंतरण, चाहे उसको किसी भी नाम से पुकारा जाए, 'न्यासी', जिसको संपत्ति 'न्यास में अंतरित' की गई, का कार्य नहीं माना जा सकता और जिसमें इस आधार पर वह हैसियत निहित होती है, जो इंग्लिश विधि में 'न्यासी' द्वारा धारित होती है ।

... ...

... यदि वह (शिबायत या मुतवल्ली) किसी मूर्ति या संस्था की तरफ से किसी संपत्ति को प्रथाओं और रूढ़ियों द्वारा विनियमित कतिपय हिताधिकारी लाभ के साथ धारित करता है, तो समर्पण के मामले में न तो हिंदू विधि के अधीन और न ही मुस्लिम प्रणाली में उस संपत्ति को शिबायत या मुतवल्ली को 'अंतरित' किया जाता है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

328. **विद्या वारुथी** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय से हिंदू विधि में शिबायत और इंग्लिश विधि में न्यासी की स्थिति के मध्य अंतर की पुष्टि की गई है । जैसाकि न्यास के मामले में होता है, समर्पित संपत्ति विधित: शिबायत में निहित नहीं होती । वह उद्देश्य जिसके लिए किसी संपत्ति को मूर्ति को समर्पित किया जाता है, का निष्पादन और संरक्षण शिबायत द्वारा किया जाता है । यद्यपि समर्पित संपत्ति शिबायत में निहित नहीं होती, फिर भी शिबायत संपत्तियों के प्रबंधन के उत्तरदायी होते हैं और विधि की दृष्टि में बंदोबस्ती वाली संपत्तियों के किसी भी प्रकार के कुप्रबंधन के लिए उत्तरदायी होते हैं । शिबायत किसी मूर्ति को समर्पित संपत्ति को उसके (मूर्ति के) लाभ के लिए धारण करते हैं । अत: इंग्लिश विधि में न्यासी और हिंदू विधि में शिबायत के सांपत्तिक अधिकारों के मध्य अंतर होता है । मुख्य न्यायमूर्ति बी. के. मुखर्जी ने **'हिंदू ला आफ रिलीजियस एंड चेरिटेबल**

ट्रस्ट्स' (पांचवां संस्करण इस्टर्न ला हाऊस, 1983, पृष्ठ 204), नाम अपनी मौलिक पुस्तक में यह लिखा है :–

> "इंग्लिश विधि में न्यास संपत्ति में विधिक संपदा न्यासी, जो उसको न्यास लाभी के लाभ के लिए धारण करता है, में निहित होती है । किसी हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती के मामले में समर्पित संपत्ति का संपूर्ण स्वामित्व विधिक व्यक्ति के रूप में स्वयमेव देवता या संस्था को अंतरित हो जाता है और शिबायत या महंत उस संपत्ति का मात्र प्रबंधक होता है ।"

उपरोक्त अंतर की पुष्टि इस न्यायालय द्वारा **प्रोफुल्ला कोरोन** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई । इस मामले में न्यायमूर्ति आर. एस. सरकारिया ने शिबायत की संकल्पना पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "जहां तक किसी व्यक्ति द्वारा पहली बार प्रशासन संभालने का संबंध है, उसकी स्थिति न्यासी की स्थिति के सदृश्य होती है; फिर भी, वह प्रमितत: इंग्लिश भाव में न्यासी की स्थिति में नहीं होता, <u>क्योंकि हिंदू विधि के अंतर्गत मूर्ति पूर्ण रूप से समर्पित संपत्ति उसमें ही निहित होती है और न कि शिबायत में</u> । यद्यपि, प्रथम बार प्रशासन संभालने वाला व्यक्ति शिबायत कभी भी नहीं होता, फिर भी विलक्षण रूप से लगभग प्रत्येक मामले में शिबायत रिवाजों और रूढ़ियों, यदि उन रिवाजों और रूढ़ियों को संस्था के संस्थापक द्वारा निर्धारित न किया गया हो, को ध्यान में रखते हुए भोगाधिकार, भोग के तरीके और भोग की सीमा के एक भाग पर अधिकार रखता है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

329. इन मताभिव्यक्तियों से इस बात की पुष्टि होती है कि किसी शिबायत की स्थिति इंग्लिश विधि में न्यासी की स्थिति से भिन्न होती है । समर्पित संपत्ति विधित: आदर्श भाव में मूर्ति में निहित होती है, न कि शिबायत में । शिबायत व्यक्तिगत हैसियत में संपत्ति की कब्जे की

वसूली के लिए कोई कार्रवाई नहीं फाइल कर सकता, किंतु वह मूर्ति की तरफ से मूर्ति को समर्पित संपत्ति के संरक्षण के लिए कार्रवाई फाइल कर सकता है । सामान्यत: समर्पण विलेख में शिबायत के कर्तव्यों के संबंध में कोई उपबंध समाविष्ट नहीं होता । तथापि, किसी अभिव्यक्त शर्त की उपस्थिति या उसकी अनुपस्थिति का यह अर्थ नहीं होता कि मूर्ति की संपत्ति शिबायत में निहित हो जाती है । यद्‌यपि संपत्ति विधित: शिबायत में निहित नहीं होती, फिर भी शिबायत का उस संपत्ति से उत्पन्न होने वाले भोगाधिकार में कुछ हित अवश्य हो सकता है ।

330. कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के समक्ष **मनोहर मुखर्जी** बनाम **भूपेन्द्र नाथ मुखर्जी**[1] वाले मामले में यह प्रश्न विचारार्थ उद्‌भूत हुआ कि क्या हिंदू विधि में शिबायत का पद एक पद है या संपत्ति, जिस पर बंदोबस्ती का संस्थापक उत्तराधिकार के क्रम में लोगों को नियुक्त या नामांकित करने के लिए सक्षम होता है । न्यायमूर्ति मुखर्जी ने पूर्व निर्णयज विधियों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया :–

> "मैं इस प्रतिपादना के समर्थन में कोई निर्णयज विधि नहीं पाता कि यदि सामान्य मामलों में शिबायत सीमित स्वामित्व के अधिकार का प्रयोग किसी ऐसी संपत्ति के संबंध में करता है, जिसको प्रथम बार बंदोबस्ती के अंतर्गत लाया गया है, तो ऐसी संपत्ति हिंदू विधि की दृष्टि में संपत्ति नहीं होती... उन अधिकारों को दृष्टि में रखते हुए, जो शिबायत के पद के साथ सामान्यतया संलग्न होते हैं, बंदोबस्ती के पद और संपत्ति का एक ही अर्थ होता है और जब यह प्रश्न दो व्यक्तियों के मध्य उद्‌भूत होता है, जिनमें से एक दावा करता है और दूसरा शिबायत होने के अधिकार को विवादित करता है, तो प्रश्न संपत्ति का प्रश्न हो जाता है... निश्चित रूप से धार्मिक पद स्वयमेव विक्रय की विषयवस्तु नहीं हो सकता और धार्मिक उपासना में प्रयुक्त जेवरात और अन्य सामग्री, जिनकी अभिरक्षा के लिए अभिकथित विक्रेता जिम्मेदार होता है और

[1] आई. एल. आर. (1933) 60 कलकत्ता 452.

जिसकी सावधानीपूर्वक अभिरक्षा के लिए वह बाध्य होता है, सभी विधिक प्रणालियों और किसी अन्य नितांत अतिरिक्त वाणिज्य के बजाय हिंदू विधि द्‌वारा अधिक प्रभावी है ।”

331. शिबायत प्रथम बार बंदोबस्ती के अंतर्गत लाई गई संपत्ति के बाबत कर्तव्यों के निर्वहन के साथ-साथ उस संपत्ति के संबंध में भोगाधिकार में भी हितबद्‌ध होता है । इस स्थिति को दृष्टि में रखते हुए शिबायत का पद अप्रतिबंधित पद नहीं है बल्कि हस्तांतरण के प्रयोजनार्थ संपत्ति भी है (इस दृष्टिकोण का अनुमोदन प्रिवी कौंसिल द्‌वारा **गणेश चंद्र धूर** बनाम **लाल बिहारी धूर**[1] और **भाबातारिनी देवी** बनाम **आशा लता देवी**[2] वाले मामलों में किया गया) । इस दृष्टिकोण की पुष्टि इस न्यायालय द्‌वारा **अंगूरबाला मुलिक** बनाम **देबाब्रता मुलिक**[3] वाले मामले में की गई है । इस मामले में विवाद यह था कि क्या अपीलार्थी शिबायत की विधवा होने के नाते शिबायत का अवयस्क पुत्र होने के बावजूद, जिसका जन्म शिबायत के प्रथम विवाह के परिणामस्वरूप हुआ था और जो इस मामले में प्रत्यर्थी है, मूर्ति के शिबायत के रूप में कार्य करने की हकदार थी । इस संबंध में यह दलील दी गई कि शिबायत का पद 1937 के हिंदू महिलाओं के सांपत्तिक अधिकार अधिनियम के अनुसार हस्तांतरित होगा । न्यायमूर्ति बी. के. मुखर्जी ने इस न्यायालय के चार न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए इस दलील को स्वीकार किया और अभिनिर्धारित किया :–

“12. यद्‌यपि शिबायत तकनीकी भाव में प्रबंधक होता है, न कि न्यासी, फिर भी शिबायत के पद को मात्र एक पद के रूप में वर्णित किया जाना सही नहीं होगा । शिबायत को न केवल बंदोबस्ती के संबंध में कर्तव्यों का निर्वहन करना होता है बल्कि उसका उस संपत्ति में फायदाप्रद हित भी होता है जिसको बंदोबस्ती के अंतर्गत पहली बार सम्मिलित किया जाता है । जैसाकि न्यायिक

---

[1] (1935-36) 63 आई. ए. 448.

[2] (1942-43) 70 आई. ए. 57.

[3] [1951] एस. सी. आर. 1125.

समिति ने उपरोक्त मामले में मताभिव्यक्ति की है, ऐसे लगभग सभी बंदोबस्ती वाले मामलों में शिबायत उक्त संपत्ति, जिसको प्रथम बार बंदोबस्ती के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है और जो बंदोबस्ती संपत्ति प्रदान किए जाने के निबंधनों या रिवाजों और रूढ़ियों पर निर्भर करता है, के भोगाधिकार में अंश रखता है । यद्यपि शिबायत के पद के साथ कोई परिलब्धियां संलग्न नहीं होती, किंतु वह बंदोबस्ती के अंतर्गत सम्मिलित की गई संपत्ति में कतिपय प्रकार के अधिकारों या हितों का उपभोग करता है, जो भागत: या कम से कम सांपत्तिक हित की प्रकृति का होता है । अत: शिबायती की संकल्पना में पद और संपत्ति और दायित्व और व्यक्तिगत हित, दोनों तत्व मिश्रित होते हैं और एक दूसरे में गुथे हुए होते हैं और दोनों में किसी तत्व को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता । बंदोबस्ती के अंतर्गत सम्मिलित की गई संपत्ति में इस व्यक्तिगत या फायदाप्रद हित की उपस्थिति शिबायत के पद को सांपत्तिक अधिकारों की प्रकृति का पद बना देती है और इस पद को संपत्ति को विधिक अधिकारों के साथ संलग्न कर देती है ।"

न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि शिबायत प्रथम बार बंदोबस्ती के अंतर्गत सम्मिलित की गई संपत्ति के भोगाधिकार में फायदाप्रद हित रखता है । यह फायदाप्रद हित सांपत्तिक अधिकार के स्वरूप में होता है । यद्यपि शिबायत की भूमिका मूर्ति के संबंध में कतिपय दायित्वों के निर्वहन पर आधारित होती है और इसके साथ लाभ भी संलग्न होते हैं, फिर भी दायित्वों और लाभों को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता । अत: पद और संपत्ति दोनों शिबायत के पद के साथ एक दूसरे से गुथे हुए होते हैं और शिबायत का व्यक्तिगत हित उसके कर्तव्यों के साथ संलग्न होता है इस दृष्टिकोण की पुष्टि **बद्रीनाथ** बनाम **पुन्ना**[1] और **प्रोफुल्ला कोरोन रिक्विटै** बनाम **सत्या कोरोन रिक्विटै** (उपरोक्त) वाले मामलों में की गई ।

पुजारी

---

[1] ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1314.

332. शिबायत के पद के संबंध में एक अंतिम बिंदु पर भी विचार किया जा सकता है । पुजारी, जो मंदिर में उपासना करता है, मात्र मूर्ति की उपासना के कारण शिबायत की हैसियत नहीं प्राप्त कर लेता । पुजारी शिबायत का सेवक या उसके द्वारा नियुक्त किया गया व्यक्ति होता है और उसको शिबायत की भांति स्वतंत्र अधिकार प्राप्त नहीं होते चाहे वह लंबे समय से अनुष्ठान संपन्न कर रहा हो । अतः पुजारियों की मात्र उपस्थिति के कारण उनमें शिबायत का कोई अधिकार निहित नहीं होता । **गौरी शंकर** बनाम **अम्बिका दत्त**[1] वाले मामले में वादी एक ऐसे व्यक्ति का वंशज था, जिसको मूर्ति की उपासना के लिए समर्पित संपत्ति के बाबत पुजारी के रूप में नियुक्त किया गया था । मंदिर में उपासना और चढ़ावे की भागीदारी के अधिकार का दावा करते हुए विभाजन का एक वाद संस्थित कराया गया । पटना उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि यह सुसंगत प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है कि क्या प्रथम बार नियुक्त किए गए व्यक्ति ने पुजारी को शिबायत के रूप में नियुक्त कर दिया है । न्यायमूर्ति रामास्वामी ने अभिनिर्धारित किया :-

> "7. ...यह अभिकथित करना महत्वपूर्ण होगा कि पुजारी या अर्चक शिबायत नहीं होते । पुजारी की नियुक्ति शिबायत द्वारा पुरोहित के रूप में उपासना संचालित करने के प्रयोजनार्थ की जाती है । किंतु इससे शिबायत के अधिकार और बाध्यताएं पुरोहित को अंतरित नहीं होती । वह पुजारी के पद पर बने रहने के अधिकार का दावा नहीं कर सकता । वह मात्र अनुष्ठानों के निर्वहन के लिए शिबायत द्वारा नियुक्त सेवक होता है । जहां किसी पुरोहित की नियुक्ति संस्थापक की इच्छा पर की जाती है तो मात्र इस कारणवश कि पुरोहित ने अनेक पीढ़ियों तक उपासना का निर्वहन किया है, उस पुरोहित के परिवार के सदस्यों को कोई स्वतंत्र अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता, जिसके आधार पर वे पुरोहित के पद पर बने रहने के अधिकार का दावा करने के हकदार नहीं होंगे ...।"

---

[1] ए. आई. आर 1954 पटना 196.

333. शिबायत में देवता की संपत्तियों के प्रबंधन के प्राधिकार निहित होते हैं और उसको उस प्रयोजन की पूर्ति सुनिश्चित करनी होती है जिसके लिए संपत्ति समर्पित की गई थी । शिबायत इस प्रबंधकीय भूमिका की पूर्ति के लिए उपासना के निर्वहन के प्रयोजनार्थ पुजारियों की नियुक्ति कर सकता है । किंतु इससे नियुक्त किए गए पुजारियों को शिबायत की हैसियत प्राप्त नहीं हो जाती । उनको (पुजारियों को) शिबायत द्वारा नियुक्त किए जाने के कारण उनके (पुजारी के) पद से हटाया जा सकता है और वह पद पर बने रहने के अधिकार का दावा नहीं कर सकते । इस न्यायालय द्वारा शिबायत और पुजारी के मध्य अंतर को **श्री श्री कालीमाता ठकुरानी ऑफ कालीघाट** बनाम **जिबंधन मुखर्जी**[1] वाले मामले में स्पष्ट किया गया है । इस मामले को 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन वाद श्री श्री कालीमाता ठकुरानी और उसके साथ संबद्ध देवताओं के उचित प्रबंधन और सेवा पूजा के लिए योजना विरचित किए जाने के प्रयोजनार्थ संस्थित कराया गया था । इस न्यायालय की संविधान पीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए न्यायमूर्ति जे आर. मुधोलकर ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "... शिबायतों को मात्र पुजारी या अर्चक कहा जाना गलत है । शिबायत, जैसाकि न्यायमूर्ति मुखर्जी (जो उस समय माननीय न्यायाधीश थे) द्वारा धार्मिक और पूर्त न्यासों की हिंदू विधि पर उनके टैगोर विधि व्याख्यानों में स्पष्ट किया गया है, देवता के सेवक मनुष्य होते हैं, जबकि पुजारी को संस्थापक या शिबायत द्वारा उपासना संचालित किए जाने के लिए नियुक्त किया जाता है । अत: पुजारी शिबायत का सेवक होता है । शिबायत का पद मात्र एक पद नहीं होता, बल्कि यह एक संपत्ति भी होता है ।"

334. पुजारी को संस्थापक या शिबायत द्वारा उपासना के लिए नियुक्त किया जाता है । इस नियुक्ति से पुजारी को शिबायत की हैसियत प्राप्त नहीं हो जाती । उनको कुप्रबंधन या अनुशासनहीनता के किसी कार्य, जो उनके कर्तव्य के निर्वहन से असंगत हो, के लिए अपने

---

[1] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 1329.

पद से हटाया भी जा सकता है । पुनः, ऐसे किसी मामले में जहां पुजारी की नियुक्ति वसीयतकर्ता की इच्छानुसार की गई हो, यह तथ्य कि नियुक्त व्यक्ति या उसके परिवार के सदस्यों को कोई स्वतंत्र अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता और इस आधार पर वे पुजारियों के रूप में अधिकार पूर्वक नियुक्ति के हकदार नहीं हो जाते । मात्र पुजारी के कार्य का निर्वहन करने के द्वारा कोई व्यक्ति शिबायत नहीं हो सकता ।

वाद फाइल करने का अनन्य अधिकार

335. विधि की दृष्टि में शिबायत की हैसियत सारभूत हैसियत होती है, जो उसको मूर्ति की संपत्तियों के प्रबंधन के अनन्य अधिकार अन्य सभी के अपवर्जन में प्रदान करती है । शिबायत को मूर्ति की संपत्तियों के प्रबंधन के अनन्य अधिकार के अतिरिक्त मूर्ति की तरफ से कार्यवाहियां संस्थित करने का भी अधिकार होता है । हमारे समक्ष लंबित कार्यवाहियों में यह विषय विवाद की विषयवस्तु रहा है कि क्या मूर्ति की तरफ से वाद फाइल करने के अधिकार का प्रयोग केवल शिबायत (ऐसे मामलों जिनमें शिबायत अपने पद पर है) द्वारा किया जा सकता है या इस अधिकार का प्रयोग मूर्ति द्वारा 'वादमित्र' के माध्यम से भी किया जा सकता है । वाद संख्या 3 में वादी निर्मोही अखाड़े ने दलील दी है कि वे निर्मोही विवादित स्थल पर भगवान राम की मूर्तियों के शिबायत हैं । निर्मोही अखाड़े की तरफ से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री एस. के. जैन ने दलील दी कि वाद संख्या 5 के वादपत्र में किए गए प्रकथनों में कुप्रबंधन या कदाचार के किसी प्रकथन की अनुपस्थिति में देवकी नंदन अग्रवाल मूर्तियों की तरफ से वादमित्र के रूप में वाद की पैरवी कर सकते थे । श्री जैन ने इस दलील का महत्वपूर्ण रूप से अवलंब लिया कि वाद संख्या 5 के वादपत्र में निर्मोहियों द्वारा किसी कुप्रबंधन का प्रकथन नहीं किया गया है । श्री एस. के. जैन ने दलील दी कि यद्यपि वाद संख्या 5 (जिसे वर्ष 1989 में संस्थित कराया गया था) के वादियों को वाद संख्या 3, जिसे निर्मोही अखाड़े द्वारा (वर्ष 1959 में) स्वयं के शिबायत होने का दावा करते हुए संस्थित कराया गया था, की जानकारी थी, किंतु फिर भी वाद संख्या 5 में फाइल किए गए वादपत्र में शिबायत

के रूप में निर्मोही अखाड़े की स्थिति को चुनौती नहीं दी गई है । निर्मोही अखाड़े ने दलील दी कि मूर्ति की तरफ से वादमित्र द्वारा फाइल किया गया वादपत्र पोषणीय नहीं है । वाद संख्या 4 के वादियों की तरफ से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल डा. धवन द्वारा इस दलील का समर्थन किया गया कि निर्मोही अखाड़ा मूर्तियों के शिबायत हैं और परिणामस्वरूप उनमें भगवान राम की मूर्तियों की तरफ से कार्यवाही फाइल करने का अनन्य अधिकार निहित है । उन्होंने (डा. धवन ने) दलील दी कि उनके इस निवेदन के बावजूद कि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित था और उस वाद को खारिज कर दिए जाने के परिणामस्वरूप निर्मोही अखाड़े का कब्जे के अनुतोष के लिए वाद फाइल करने का अधिकार समाप्त हो जाता है, किंतु इससे निर्मोहियों के शिबायत के रूप में अधिकार समाप्त नहीं होते । इसलिए डा. धवन द्वारा किए गए निवेदन के अनुसार निर्मोही अखाड़ा शिबायत के पद पर बना रहा और उसको भगवान राम की मूर्तियों की तरफ से वाद फाइल करने का अनन्य अधिकार वर्ष 1989 में भी प्राप्त था । अत: यह दलील दी गई कि इससे वाद संख्या 5 पोषणीय नहीं रह जाता ।

336. वाद संख्या 5 की पोषणीयता को इस दलील के आधार पर चुनौती दी गई है कि केवल शिबायत ही मूर्ति की तरफ से वाद फाइल कर सकता है । यह प्रश्न मूर्ति की विलक्षण प्रकृति के कारण उद्भूत हुआ कि मूर्ति की तरफ से वाद कौन फाइल कर सकता है । मूर्ति विधिक व्यक्ति होती है और वह प्रथम बार समर्पित की गई संपत्ति की स्वामी होती है, किंतु (जैसीकि चर्चा हमने पहले भी की है) वह केवल आदर्श भाव में ही संपत्ति की स्वामी होती है । विधित:, मूर्ति अपने नाम से वाद संस्थित करा सकती है और उसके विरुद्ध उसके नाम में वाद संस्थित कराया जा सकता है । तथापि, समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए मूर्ति द्वारा संस्थित कराया गया कोई भी वाद आवश्यक रूप से मूर्ति की तरफ से किसी मनुष्य द्वारा संस्थित कराया जाना चाहिए । वादी ने **महाराजा जगदीन्द्र नाथ राय बहादुर** बनाम **रानी**

हिमंता कुमारी देवी[1] वाले मामले में शिबायत की हैसियत में मूर्ति की तरफ से प्रतिवादी को कतिपय भूमि से बेदखल किए जाने का अभिकथन करते हुए वाद संस्थित कराया था । प्रतिवादी ने परिसीमा के आधार पर वाद का विरोध किया । शिबायत ने अभिकथन किया कि वह बेदखली के समय अवयस्क था और इसलिए उसके विरुद्ध परिसीमा की अवधि तब तक आरंभ नहीं हुई जब तक कि उसने वयस्कता नहीं प्राप्त कर ली । प्रिवी कौंसिल की तरफ से निर्णय पारित करते हुए सर आर्थर विल्सन ने अभिनिर्धारित किया :–

> "किंतु यह अवधारणा करते हुए कि धार्मिक समर्पण कठोरतम प्रकृति का समर्पण होता है, यह अवधारणा शेष रह जाती है कि समर्पित संपत्ति के कब्जे और प्रबंधन का संबंध शिबायत से होता है और इसके साथ संपत्ति के संरक्षण के लिए उन आवश्यक वादों को फाइल करने का अधिकार भी सम्मिलित होता है, जिनका फाइल किया जाना आवश्यक हो । वाद फाइल करने का ऐसा प्रत्येक अधिकार शिबायत में निहित होता है, न कि प्रतिमा में । और वर्तमान मामले में वाद फाइल करने का अधिकार वादी को तब उद्भूत हुआ, जब उसकी आयु वाद फाइल करने की आयु से कम थी । अत: यह मामला परिसीमा अधिनियम की धारा 7 की स्पष्ट भाषा के अंतर्गत आता है, जो यह कहती है कि – यदि कोई व्यक्ति, जो वाद संस्थित कराने का हकदार है ... यदि वह उस समय, जहां से परिसीमा की अवधि की संगणना की जानी है, अवयस्क होता है, उस समय के भीतर वयस्कता की आयु प्राप्त करने के पश्चात् वाद संस्थित करा सकता है, जो तीन वर्ष होगी ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

प्रिवी कौंसिल ने इस तथ्य का परीक्षण किया कि क्या शिबायत के विरुद्ध परिसीमा की गणना बेदखली के समय आरंभ हो गई थी । प्रिवी कौंसिल ने ऐसा करते हुए वाद शिबायत में निहित वाद फाइल करने के

---

[1] (1903-04) 31 आई. ए. 203.

अधिकार पर विचार किया और न कि मूर्ति में निहित वाद फाइल करने के अधिकार पर । अंततः, प्रिवी कौंसिल ने अभिनिर्धारित किया कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं था, चूंकि बेदखली के समय शिबायत अवयस्क था । अतः यह तथ्य सुसंगत नहीं था कि क्या परिसीमा की गणना देवता के वाद फाइल करने के अधिकार को ध्यान में रखते हुए की गई थी या नहीं, चूंकि ऐसा कोई भी अधिकार शिबायत में निहित नहीं था ।

337. सामान्यतया मूर्ति की तरफ से वाद फाइल करने का अधिकार शिबायत में निहित होता है । तथापि, इसका यह अर्थ नहीं होता कि मूर्ति कतिपय परिस्थितियों में अपने नाम में वाद फाइल करने के अंतर्निहित और स्वतंत्र अधिकार से वंचित हो जाती है । संपत्ति मूर्ति में निहित होती है । संपत्ति की प्राप्ति (recovery) के लिए वाद फाइल करने का अधिकार उन अधिकारों का अंतर्निहित घटक होता है, जो संपत्ति के स्वामित्व से उद्भूत होते हैं । शिबायत मात्र एक मनुष्य होता है, जिसके द्वारा वाद फाइल करने के अधिकार का प्रयोग किया जाता है । मूर्ति की तरफ से उसके तत्कालीन संरक्षक और उसकी संपत्तियों के एकमात्र प्रबंधक की हैसियत से केवल शिबायत द्वारा वाद फाइल किया जाना चाहिए । ऐसे मामलों, जिनमें विधितः नियुक्त शिबायत विद्यमान होता है, जो देवता के हितों के संरक्षण के लिए समस्त आवश्यक कार्रवाई करने और निरंतर रूप से उनके संरक्षण और विधान को सुनिश्चित करने के योग्य और इच्छुक होता है, तो देवता के वाद फाइल करने के अधिकार को देवता की तरफ से शिबायत द्वारा वाद फाइल करने के अधिकार से पृथक् नहीं किया जा सकता । ऐसी स्थितियों में मूर्ति के वाद फाइल करने के अधिकार का विलय मूर्ति की तरफ से शिबायत द्वारा वाद फाइल करने के अधिकार में निहित हो जाता है । विधि की इस स्थिति को न्यायमूर्ति बी. के. मुखर्जी द्वारा लिखित 'द हिंदू ला आफ रिलीजियस एंड चैरिटेबल ट्रस्ट्स', (पांचवा संस्करण, ईस्टर्न ला हाऊस, 1983 पृष्ठ 257-258) नामक पुस्तक में संक्षेप में निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया गया है :–

"अतः (**जगदीन्द्र नाथ** वाले मामले) में दिया गया यह विनिश्चय निम्नलिखित तीन बातों को स्थापित करता है –

(1) देवता की संपत्ति के संबंध में वाद फाइल करने का अधिकार शिबायत में निहित होता है;

(2) यह अधिकार शिबायत का व्यक्तिगत अधिकार है, जो उसको परिसीमा अधिनियम द्वारा उपबंधित विशेषाधिकारों का दावा करने के लिए हकदार बनाता है; और

(3) शिबायत अपने स्वयं के नाम में वाद फाइल कर सकता है और यह आवश्यक नहीं कि देवता का नाम भी वादी के नाम की भांति दर्शित किया जाए, यद्यपि, अभिवचनों में यह दर्शित होना चाहिए कि शिबायत देवता की तरफ से वाद फाइल कर रहा है ।"

338. मूर्ति की तरफ से शिबायत द्वारा फाइल किया गया वाद मूर्ति पर भी बाध्यकारी होता है । इसी कारणवश यह प्रश्न कि मूर्ति की तरफ से वाद कौन फाइल कर सकता है, सारभूत विधि का प्रश्न है । किसी अपरचित व्यक्ति में मूर्ति की तरफ से कार्यवाही संस्थित कराने का अधिकार निहित किया जाना और मूर्ति पर उन कार्यवाहियों को बाध्यकारी किए जाने का आशय होगा कि मूर्ति और उसकी संपत्तियों को ऐसे अनेक व्यक्ति की दया पर छोड़ दिया गया है, जो मूर्ति के 'वादमित्र' होने का दावा करते हैं । इसलिए मूर्ति के हित उसकी तरफ से फाइल की गई कार्यवाहियों को निर्बंधित किए जाने और उनकी संवीक्षा किए जाने के द्वारा संरक्षित हैं । सामान्यतया इसी कारणवश केवल विधिपूर्वक नियुक्त किया गया शिबायत ही मूर्ति की तरफ से वाद फाइल कर सकता है । जब कोई विधिपूर्वक नियुक्त शिबायत मूर्ति की तरफ से वाद फाइल करता है, तो यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या यह मात्र प्रक्रिया का विषय है कि मूर्ति कार्यवाही का पक्ष बनाया गया है । जब शिबायत की हैसियत में वाद फाइल किया जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह वाद मूर्ति की तरफ से और उनके लाभार्थ फाइल किया गया है ।

आगामी अगले अंक में..........

<u>संसद् के अधिनियम</u>

बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005

(2006 का अधिनियम संख्यांक 4)

[20 जनवरी, 2006]

बालक अधिकारों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय आयोग और राज्य आयोगों और बालकों के विरुद्ध अपराधों या बालक अधिकारों के अतिक्रमण के त्वरित विचारण के लिए बालक न्यायालयों के गठन तथा उससे संबंधित और उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत ने 1990 में हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा के शिखर सम्मेलन में भाग लिया था, जिसने बालकों के जीवित रहने, संरक्षण और विकास के संबंध में एक घोषणा को अंगीकार किया ;

और, भारत ने 11 दिसम्बर, 1992 को हुए बालक अधिकार संबंधी अभिसमय (बा.अ.अ.) को भी स्वीकार कर लिया है ;

और बालक अधिकार संबंधी अभिसमय एक अन्तरराष्ट्रीय संधि है जो हस्ताक्षरकर्ता राज्यों के लिए यह अनिवार्य बनाती है कि वे अभिसमय में प्रगणित बालकों के अधिकारों की संरक्षा के लिए सभी आवश्यक उपाय करें ;

और बालकों के अधिकारों के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने बालकों के लिए हाल ही में जो एक नई पहल आरम्भ की है वह यह है कि उसने राष्ट्रीय बालक चार्टर, 2003 को अंगीकार किया है ;

और मई, 2002 में हुए बालकों के संबंध में संयुक्त राष्ट्र महासभा के विशेष सत्र में "बालकों के लिए उपयुक्त विश्व" नामक निष्कर्ष दस्तावेज को अंगीकृत किया गया था, जिसमें वर्तमान दशक के लिए सदस्य देशों द्वारा अपनाए जाने वाले लक्ष्य, उद्देश्य, युक्तियां और क्रियाकलाप अंतर्विष्ट हैं ;

और यह समीचीन है कि इस संबंध में सरकार द्वारा अंगीकृत नीतियों, बालक अधिकार संबंधी अभिसमय में विहित मानकों और अन्य

सभी सुसंगत अन्तरराष्ट्रीय लिखतों को कार्यान्वित करने के लिए बालकों से संबंधित विधि अधिनियमित की जाए ;

भारत गणराज्य के छप्पनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर, संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "अध्यक्ष" से, यथास्थिति, आयोग या राज्य आयोग का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(ख) "बालक अधिकारों" के अन्तर्गत 20 नवम्बर, 1989 को बालक अधिकार संबंधी संयुक्त राष्ट्र अभिसमय में अंगीकृत और 11 दिसम्बर, 1992 को भारत सरकार द्वारा अनुसमर्थित बालकों के अधिकार भी हैं ;

(ग) "आयोग" से धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग अभिप्रेत है ;

(घ) "सदस्य" से, यथास्थिति, आयोग या राज्य आयोग का सदस्य अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत अध्यक्ष भी है ;

(ङ) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है ;

(च) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(छ) "राज्य आयोग" से धारा 17 के अधीन गठित राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग अभिप्रेत है ।

अध्याय 2

राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग

3. **राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग का गठन –** (1) केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्‌वारा इस अधिनियम के अधीन एक निकाय का, जो राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग के नाम से ज्ञात होगा, उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और उसे सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए, गठन करेगी ।

(2) आयोग निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) एक अध्यक्ष, जो विख्यात व्यक्ति हो और जिसने बालकों के कल्याण के संवर्धन के लिए उत्कृष्ट कार्य किया हो ; और

(ख) केन्द्रीय सरकार द्‌वारा नियुक्त किए जाने वाले छह सदस्य, जिनमें से कम से कम दो स्त्रियां होंगी और प्रत्येक निम्नलिखित क्षेत्रों में श्रेष्ठता, योग्यता, सत्यनिष्ठा, प्रतिष्ठा और अनुभव रखने वाला व्यक्ति होगा, –

(i) शिक्षा ;

(ii) बाल स्वास्थ्य, देख-रेख, कल्याण या बाल विकास ;

(iii) किशोर न्याय या उपेक्षित या तिरस्कृत बालकों या नि:शक्त बालकों की देख-रेख ;

(iv) बालक श्रम या बालकों के कष्टों का आहरण ;

(v) बालक मनोविज्ञान या समाजशास्त्र ; और

(vi) बालकों से संबंधित विधियां ।

(3) आयोग का कार्यालय दिल्ली में होगा ।

4. **अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति –** केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्‌वारा, अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को नियुक्त करेगी :

परन्तु अध्यक्ष की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्‌वारा [1][महिला और बाल विकास मंत्रालय या विभाग के प्रभारी मंत्री] की अध्यक्षता में गठित तीन सदस्यों वाली चयन समिति की सिफारिश पर की जाएगी ।

---

[1] 2007 के अधिनियम सं. 4 की धारा 2 द्‌वारा प्रतिस्थापित ।

5. **अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि और सेवा की शर्तें** – (1) अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य उस रूप में उस तारीख से, जिसको वे अपना पदभार ग्रहण करते हैं, तीन वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेंगे :

परन्तु कोई भी अध्यक्ष या सदस्य दो पदावधियों से अधिक के लिए पद धारण नहीं करेगा :

परन्तु यह और कि कोई अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य –

(क) अध्यक्ष की दशा में, पैंसठ वर्ष की आयु ; और

(ख) सदस्य की दशा में, साठ वर्ष की आयु,

प्राप्त होने के पश्चात् उस हैसियत में अपना पद धारण नहीं करेगा ।

(2) अध्यक्ष या सदस्य, केन्द्रीय सरकार को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्‌वारा किसी भी समय अपना पद त्याग सकेगा ।

6. **अध्यक्ष और सदस्यों के वेतन और भत्ते** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो केन्द्रीय सरकार द्‌वारा विहित की जाएं :

परन्तु, यथास्थिति, अध्यक्ष या किसी सदस्य के न तो वेतन और भत्तों में तथा न उसकी सेवा के अन्य निबंधनों और शर्तों में, उसकी नियुक्ति के पश्चात्, उसमें अलाभकारी परिवर्तन किए नहीं जाएंगे ।

7. **पद से हटाया जाना** – (1) उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अध्यक्ष को उसके पद से साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर केन्द्रीय सरकार के आदेश द्‌वारा हटाया जा सकेगा ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार, आदेश द्‌वारा अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को पद से हटा सकेगी यदि, यथास्थिति, अध्यक्ष या ऐसा अन्य सदस्य –

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया जाता है ; या

(ख) अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी सवेतन नियोजन में लगता है ; या

(ग) कार्य करने से इनकार करता है या कार्य करने में असमर्थ हो जाता है ; या

(घ) विकृतचित्त का है और किसी सक्षम न्यायालय द्वारा ऐसा घोषित किया गया है ; या

(ङ) अपने पद का ऐसा दुरुपयोग करता है जिससे उसका पद पर बने रहना लोकहित के लिए हानिकारक हो जाता है ; या

(च) किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है और कारावास से दंडादिष्ट किया जाता है, जिसमें केन्द्रीय सरकार की राय में, नैतिक अधमता अन्तर्वलित है ; या

(छ) आयोग से अनुपस्थित रहने की अनुमति लिए बिना उसकी तीन क्रमवर्ती बैठकों में अनुपस्थित रहता है ।

(3) इस धारा के अधीन किसी व्यक्ति को तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति को उस मामले में सुनवाई का अवसर न दे दिया गया हो ।

8. **अध्यक्ष या सदस्य द्वारा पद रिक्त किया जाना** – (1) यदि, यथास्थिति, अध्यक्ष या कोई सदस्य, –

(क) धारा 7 में वर्णित निरर्हताओं में से किसी के अधीन हो जाता है ; या

(ख) धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन अपना त्यागपत्र निविदत्त कर देता है,

तो उस पर उसका पद रिक्त हो जाएगा ।

(2) यदि अध्यक्ष या सदस्य के पद में, उसकी मृत्यु, त्यागपत्र या अन्यथा कारण से आकस्मिक रिक्ति हो जाती है तो ऐसी रिक्ति को धारा 4 के उपबंधों के अनुसार नब्बे दिन के भीतर नई नियुक्ति करके भरा जाएगा और इस प्रकार नियुक्त व्यक्ति वह पद उस पदावधि की उस शेष अवधि के लिए धारण करेगा जिसके लिए, यथास्थिति, वह अध्यक्ष या सदस्य, जिसके स्थान पर वह इस प्रकार नियुक्त किया जाता है, उस पद को धारण करता है ।

9. **रिक्तियों, आदि से आयोग की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना** – आयोग का कोई कार्य या कार्यवाही, केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि –

(क) आयोग में कोई रिक्ति है या उसके गठन में कोई त्रुटि है ; या

(ख) किसी व्यक्ति की अध्यक्ष या सदस्य के रूप में नियुक्ति में कोई त्रुटि है ; या

(ग) आयोग की प्रक्रिया में कोई ऐसी अनियमितता है, जो मामले के गुणागुण पर प्रभाव नहीं डालती है ।

10. **कारबार के संव्यवहार के लिए प्रक्रिया** – (1) आयोग अपने कार्यालय में, ऐसे समय पर जो अध्यक्ष ठीक समझे, नियमित रूप से अधिवेशन करेगा किन्तु अंतिम और अगले अधिवेशन के बीच तीन मास का अंतर नहीं होगा ।

(2) अधिवेशन में सभी विनिश्चय बहुमत द्वारा लिए जाएंगे :

परन्तु बराबर मतों की दशा में, अध्यक्ष, या उसकी अनुपस्थिति में पीठासीन व्यक्ति का द्वितीय या निर्णायक मत होगा और वह उसका प्रयोग करेगा ।

(3) यदि अध्यक्ष किसी कारण से आयोग के अधिवेशन में उपस्थित रहने में असमर्थ है तो उस अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों द्वारा अपने में से चुना गया कोई सदस्य पीठासीन होगा ।

(4) आयोग किसी अधिवेशन में अपने कारबार के संव्यवहार के लिए प्रक्रिया के, ऐसे अधिवेशन में गणपूर्ति सहित, ऐसे नियमों का पालन करेगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

(5) आयोग के सभी आदेश और विनिश्चय सदस्य-सचिव द्वारा या इस निमित्त सदस्य-सचिव द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत आयोग के किसी अन्य अधिकारी द्वारा अधिप्रमाणित किए जाएंगे ।

11. **आयोग के सदस्य-सचिव, अधिकारी और अन्य कर्मचारी** – (1) केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, भारत सरकार के संयुक्त-सचिव या अतिरिक्त सचिव की पंक्ति से नीचे के अधिकारी को आयोग के सदस्य-सचिव के रूप में नियुक्त नहीं करेगी और आयोग को ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जो उसके कृत्यों के दक्षतापूर्ण पालन के लिए आवश्यक हों ।

(2) सदस्य-सचिव, आयोग के क्रियाकलापों के उचित प्रशासन और

उसके दिन-प्रतिदिन के प्रबंध के लिए उत्तरदायी होगा तथा वह ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग तथा ऐसे अन्य कर्तव्यों का निर्वहन करेगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

(3) आयोग के प्रयोजन के लिए नियुक्त सदस्य-सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

12. **वेतन और भत्तों का अनुदानों में से संदाय किया जाना –** अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्तों का तथा प्रशासनिक व्ययों का, जिनके अन्तर्गत धारा 11 में निर्दिष्ट सदस्य-सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन भी हैं, धारा 27 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदाय किया जाएगा ।

अध्याय 3

आयोग के कृत्य और शक्तियां

13. **आयोग के कृत्य –** (1) आयोग, निम्नलिखित सभी या किन्हीं कृत्यों का निर्वहन करेगा, –

(क) बालक अधिकारों के संरक्षण के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंधित रक्षोपायों की परीक्षा और पुनर्विलोकन करना तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए उपायों की सिफारिश करना ;

(ख) केन्द्रीय सरकार को वार्षिक रूप से और ऐसे अन्य अंतरालों पर, जिन्हें आयोग उचित समझे, उन रक्षोपायों के कार्यकरण पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना ;

(ग) बालक अधिकारों के अतिक्रमण की जांच करना और ऐसे मामलों में कार्यवाहियां आरम्भ करने की सिफारिश करना ;

(घ) उन सभी पहलुओं की परीक्षा करना जो आतंकवाद, सांप्रदायिक हिंसा, दंगे, प्राकृतिक आपदा, घरेलू हिंसा, एचआईवी/एड्स, अवैध व्यापार, दुर्व्यवहार, उत्पीड़न और शोषण, अश्लील साहित्य और वेश्यावृत्ति से प्रभावित बालक अधिकारों के उपयोग को रोकते हैं और समुचित उपचारी उपायों की सिफारिश करना ;

(ङ) उन बालकों से, जिन्हें विशेष देख-रेख और संरक्षण की आवश्यकता है, जिनके अन्तर्गत कष्टों से पीड़ित बालक, तिरस्कृत और असुविधाग्रस्त बालक, विधि का उल्लंघन करने वाले बालक, किशोर, कुटुम्ब रहित बालक और कैदियों के बालक भी हैं, संबंधित मामलों की जांच पड़ताल करना और उपयुक्त उपचारी उपायों की सिफारिश करना ;

(च) बालक अधिकारों से संबंधित संधियों और अन्य अन्तरराष्ट्रीय लिखतों का अध्ययन करना और विद्‌यमान नीतियों, कार्यक्रमों और अन्य क्रियाकलापों का कालिक पुनर्विलोकन करना तथा बालकों के सर्वोत्तम हित में उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिशें करना ;

(छ) बालक अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उसे अग्रसर करना ;

(ज) समाज के विभिन्न वर्गों के बीच बालक अधिकार संबंधी जानकारी का प्रसार करना और प्रकाशनों, मीडिया, विचार गोष्ठियों और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध रक्षोपायों के प्रति जागरुकता का संवर्धन करना ;

(झ) केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी के नियंत्रणाधीन किसी किशोर अभिरक्षागृह या किसी अन्य निवास स्थान या बालकों के लिए बनाई गई संस्था, जिसके अन्तर्गत किसी सामाजिक संगठन द्‌वारा चलाए जाने वाली संस्था भी है, का निरीक्षण करना या करवाना ; जहां बालकों को उपचार, सुधार या संरक्षण के प्रयोजनों के लिए निरुद्‌ध किया जाता है या रखा जाता है, निरीक्षण करना या करवाना और किसी उपचारी कार्रवाई के लिए, यदि आवश्यक हो, संबंधित प्राधिकारियों से बातचीत करना ;

(ञ) निम्नलिखित से संबंधित मामलों के परिवादों की जांच करना और इन मामलों पर स्वप्रेरणा से विचार करना –

(i) बालक अधिकारों से वंचन और उनका अतिक्रमण ;

(ii) बालकों के संरक्षण और विकास के लिए उपबंध करने वाली विधियों का अक्रियान्वयन ;

(iii) बालकों की कठिनाइयों को दूर करने और बालकों के कल्याण को सुनिश्चित करने तथा ऐसे बालकों को अनुतोष प्रदान करने के उद्देश्य के लिए नीतिगत विनिश्चयों, मार्गदर्शनों या अनुदेशों का अननुपालन ; या ऐसे विषयों से उद्भूत मुद्दों पर समुचित पदाधिकारियों के साथ बातचीत करना ; और

(ट) ऐसे अन्य कृत्य करना, जो बालकों के अधिकारों के संवर्धन और उपर्युक्त कृत्यों से आनुषंगिक किसी अन्य मामले के लिए आवश्यक समझे जाएं ।

(2) आयोग ऐसे किसी मामले की जांच नहीं करेगा जो किसी राज्य आयोग या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन सम्यक् रूप से गठित किसी अन्य आयोग के समक्ष लम्बित है ।

14. **जांच से संबंधित शक्तियां** – (1) आयोग को धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ञ) में निर्दिष्ट किसी विषय की जांच करते समय और विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के संबंध में वे सभी शक्तियां होंगी, जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय को होती हैं, अर्थात् :–

(क) किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना ;

(ख) किसी दस्तावेज का प्रकटीकरण और पेश किया जाना ;

(ग) शपथ पत्रों पर साक्ष्य लेना ;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अध्यपेक्षा करना ; और

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ।

(2) आयोग को किसी मामले को ऐसे मजिस्ट्रेट को भेजने की

शक्ति होगी जिसे उसका विचारण करने की अधिकारिता है और वह मजिस्ट्रेट जिसे कोई ऐसा मामला भेजा जाता है, अभियुक्त के विरुद्ध परिवाद सुनने के लिए इस प्रकार अग्रसर होगा मानो वह मामला दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 346 के अधीन उसको भेजा गया है ।

15. **जांच के पश्चात् कार्रवाई** – आयोग, इस अधिनियम के अधीन की गई किसी जांच के पूरा होने पर, निम्नलिखित कार्रवाई कर सकेगा, अर्थात् :–

(i) जहां जांच से बालक अधिकारों के किसी गंभीर प्रकृति के अतिक्रमण का या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबंधों का उल्लंघन होना प्रकट होता है वहां, वह सम्बद्ध सरकार या प्राधिकारी को संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन के लिए कार्यवाहियां या ऐसी अन्य कार्रवाई जो आयोग ठीक समझे, आरम्भ करने के लिए सिफारिश कर सकेगा ;

(ii) उच्चतम न्यायालय या संबंधित उच्च न्यायालय से ऐसे निदेशों, आदेशों या रिटों के लिए जो वह न्यायालय उचित समझे, अनुरोध कर सकेगा ;

(iii) पीड़ित व्यक्ति या उसके कुटुम्ब के सदस्यों को ऐसे तत्काल अंतरिम सहायता मंजूर करने की, जो आयोग उचित समझे, सम्बद्ध सरकार या प्राधिकारी को सिफारिश कर सकेगा ।

16. **आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्ट** – (1) आयोग, केन्द्रीय सरकार को और सम्बद्ध राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और किसी भी समय ऐसे विषय पर जो उसकी राय में इतना अतिआवश्यक या महत्वपूर्ण है कि उसको वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक आस्थगित नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकेगा ।

(2) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या सम्बद्ध राज्य सरकार आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टों को आयोग की सिफारिशों पर की गई या किए जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के ज्ञापन सहित और सिफारिशों की अस्वीकृति के कारणों सहित, यदि कोई हों, यथास्थिति, संसद् या

राज्य विधान-मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष ऐसी रिपोर्टों की प्राप्ति की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर रखवाएगी ।

(3) वार्षिक रिपोर्ट ऐसे प्ररूप और रीति में तैयार की जाएगी और उसमें ऐसे ब्यौरे अंतर्विष्ट होंगे जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

अध्याय 4

राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग

17. **राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग का गठन** – (1) राज्य सरकार, इस अध्याय के अधीन एक निकाय का, राज्य आयोग को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और उसे सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए जो .... (राज्य का नाम) बालक अधिकार संरक्षण आयोग के नाम से ज्ञात होगा, गठन कर सकेगी ।

(2) राज्य आयोग निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) एक अध्यक्ष, जो विख्यात व्यक्ति हो और जिसने बालकों के कल्याण के संवर्धन के लिए उत्कृष्ट कार्य किया हो ; और

(ख) राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले छह सदस्य, जिनमें से कम से कम दो स्त्रियां होंगी और प्रत्येक निम्नलिखित क्षेत्रों में श्रेष्ठता, योग्यता, सत्यनिष्ठा, प्रतिष्ठा और अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से –

(i) शिक्षा ;

(ii) बाल स्वास्थ्य, देख-रेख, कल्याण या बाल विकास ;

(iii) किशोर न्याय या उपेक्षित या तिरस्कृत बालकों या नि:शक्त बालकों की देख-रेख ;

(iv) बालक श्रम या बालकों के कष्टों का आहरण ;

(v) बालक मनोविज्ञान या समाजशास्त्र ; और

(vi) बालकों से संबंधित विधियां ।

(3) राज्य आयोग का मुख्यालय ऐसे स्थान पर होगा जो राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करे ।

18. **अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति** – राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति करेगी :

परन्तु अध्यक्ष की नियुक्ति, राज्य सरकार द्वारा बालकों से संबंधित विभाग के प्रभारी मंत्री की अध्यक्षता में गठित तीन सदस्यों वाली समिति की सिफारिश पर की जाएगी ।

19. **अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि और सेवा की शर्तें** – (1) अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य उस रूप में उस तारीख से, जिसको वे अपना पदभार ग्रहण करते हैं, तीन वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेंगे :

परन्तु कोई भी अध्यक्ष या सदस्य दो पदावधियों से अधिक के लिए पद धारण नहीं करेगा :

परन्तु यह और कि कोई अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य –

(क) अध्यक्ष की दशा में, पैंसठ वर्ष की आयु ; और

(ख) सदस्य की दशा में, साठ वर्ष की आयु,

प्राप्त होने के पश्चात् उस हैसियत में अपना पद धारण नहीं करेगा ।

(2) अध्यक्ष या कोई सदस्य राज्य सरकार को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा किसी भी समय अपना पद त्याग सकेगा ।

20. **अध्यक्ष और सदस्यों के वेतन और भत्ते** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं :

परन्तु, यथास्थिति, अध्यक्ष या किसी सदस्य के न तो वेतन और भत्तों में तथा न उसकी सेवा के अन्य निबंधनों और शर्तों में, उसकी नियुक्ति के पश्चात्, उसके अलाभकारी परिवर्तन किया जाएगा ।

21. **राज्य आयोग के सचिव, अधिकारी और अन्य कर्मचारी** – (1) राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, राज्य सरकार के सचिव की पंक्ति से नीचे के अधिकारी को राज्य आयोग के सचिव के रूप में नियुक्त नहीं करेगी और राज्य आयोग को ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जो उसके कृत्यों के दक्षतापूर्ण पालन के लिए आवश्यक हों ।

(2) सचिव, राज्य आयोग के क्रियाकलापों के उचित प्रशासन और

उसके दिन-प्रतिदिन के प्रबंध के लिए उत्तरदायी होगा तथा वह ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कर्तव्यों का पालन करेगा जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

(3) राज्य आयोग के प्रयोजन के लिए नियुक्त सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते, तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

22. **वेतन और भत्तों का अनुदानों में से संदाय किया जाना** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्तों का तथा प्रशासनिक व्ययों का, जिनके अन्तर्गत धारा 21 में निर्दिष्ट सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन, भत्ते और पैंशन भी हैं, धारा 28 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदाय किया जाएगा ।

23. **राज्य आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टें** – (1) राज्य आयोग, राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और किसी भी समय ऐसे विषय पर, जो उसकी राय में इतना अति आवश्यक या महत्वपूर्ण है कि उसको वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक आस्थगित नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकेगा ।

(2) राज्य सरकार, उपधारा (1) में निर्दिष्ट सभी रिपोर्टों को राज्य से संबंधित सिफारिशों पर की गई या किए जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के स्पष्टीकारक ज्ञापन सहित और ऐसी सिफारिशों में से किसी की अस्वीकृति के कारणों सहित, यदि कोई हो, जहां राज्य विधान-मंडल दो सदनों से मिलकर बनता है वहां प्रत्येक सदन के समक्ष या जहां ऐसा विधान-मंडल एक सदन से मिलकर बनता है वहां उस सदन के समक्ष रखवाएगी ।

(3) वार्षिक रिपोर्ट ऐसे प्ररूप और रीति में तैयार की जाएगी तथा उसमें ऐसे ब्यौरे अंतर्विष्ट होंगे जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

24. **राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग से संबंधित कतिपय उपबंधों का राज्य आयोगों को लागू होना** – धारा 7, धारा 8, धारा 9, धारा 10, धारा 13 की उपधारा (1) और धारा 14 तथा धारा 15 के उपबंध राज्य आयोग को निम्नलिखित उपांतरणों के अधीन रहते हुए लागू होंगे, और प्रभावी होंगे, अर्थात् :–

(क) "आयोग" के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे "राज्य आयोग" के प्रति निर्देश हैं ;

(ख) "केन्द्र सरकार" के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे "राज्य सरकार" के प्रति निर्देश हैं ; और

(ग) "सदस्य सचिव" के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे "सचिव" के प्रति निर्देश हैं ।

अध्याय 5

बालक न्यायालय

25. **बालक न्यायालय** – राज्य सरकार, बालकों के विरुद्ध अपराधों या बालक अधिकारों के अतिक्रमण के अपराधों का त्वरित विचारण करने का उपबंध करने के प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, अधिसूचना द्वारा, उक्त अपराधों का विचारण करने के लिए राज्य में कम-से-कम एक न्यायालय को या प्रत्येक जिले में किसी सेशन न्यायालय को बालक न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकेगी :

परन्तु इस धारा की कोई बात तब लागू नहीं होगी, जब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन ऐसे अपराधों के लिए –

(क) कोई सेशन न्यायालय पहले से ही विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट है ; या

(ख) कोई विशेष न्यायालय पहले से ही गठित है ।

26. **विशेष लोक अभियोजक** – राज्य सरकार, प्रत्येक बालक न्यायालय के लिए, अधिसूचना द्वारा, एक लोक अभियोजक विनिर्दिष्ट करेगी या किसी ऐसे अधिवक्ता को, जिसने कम-से-कम सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय किया हो, उस न्यायालय में मामलों के संचालन के प्रयोजन के लिए, विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त करेगी ।

अध्याय 6

वित्त, लेखा और संपरीक्षा

27. **केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान** – (1) केन्द्रीय सरकार, संसद्

द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात्, आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशियों का संदाय करेगी, जो केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए, ठीक समझे ।

(2) आयोग, इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए ऐसी धनराशियां खर्च कर सकेगा जो वह ठीक समझे और ऐसी राशियां उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय मानी जाएंगी ।

28. **राज्य सरकारों द्वारा अनुदान** – (1) राज्य सरकार, विधान-मंडल द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात् राज्य आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशियों का संदाय करेगी जो राज्य सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए ठीक समझे ।

(2) राज्य आयोग, इस अधिनियम के अध्याय 3 के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए ऐसी धनराशियां खर्च कर सकेगा जो वह ठीक समझे और ऐसी राशियां उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय मानी जाएंगी ।

29. **आयोग के लेखा और संपरीक्षा** – (1) आयोग उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो केन्द्रीय सरकार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा ऐसे अंतरालों पर की जाएगी जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय आयोग द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और इस अधिनियम के अधीन आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को उस संपरीक्षा के संबंध में वे ही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार प्राप्त होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को साधारणतया सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में होते हैं और विशिष्टतया उसे बहियां, लेखे, संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश

किए जाने की मांग करने तथा आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) आयोग द्वारा केन्द्रीय सरकार को नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा या इस निमित्त उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित, आयोग के लेखे, उन पर संपरीक्षा रिपोर्ट सहित, प्रति वर्ष भेजे जाएंगे और केन्द्रीय सरकार ऐसी संपरीक्षा रिपोर्ट को उसके प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी ।

30. **राज्य आयोग के लेखा और संपरीक्षा** – (1) राज्य आयोग, उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण, ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो राज्य सरकार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) राज्य आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा ऐसे अंतरालों पर की जाएगी जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय, राज्य आयोग द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और इस अधिनियम के अधीन राज्य आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को उस संपरीक्षा के संबंध में वे ही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार प्राप्त होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को साधारणतया सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में होते हैं और विशिष्टतया उसे बहियां, लेखे, संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने तथा राज्य आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) राज्य आयोग द्वारा राज्य सरकार को नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा या इस निमित्त उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित राज्य आयोग के लेखे, उन पर संपरीक्षा रिपोर्ट सहित प्रति वर्ष भेजे जाएंगे और राज्य सरकार ऐसी संपरीक्षा रिपोर्ट को उसके प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखवाएगी ।

अध्याय 7

प्रकीर्ण

31. **सद्भावपूर्वक कार्रवाई के लिए संरक्षण** – इस अधिनियम या

इसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के संबंध में अथवा किसी रिपोर्ट या कागज-पत्र केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग या राज्य आयोग के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी प्रकाशन के संबंध में कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग, राज्य आयोग या उसके किसी सदस्य अथवा केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग या राज्य आयोग के निदेशाधीन कार्य करने वाले किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होगी ।

32. **अध्यक्ष, सदस्यों और अन्य अधिकारियों का लोक सेवक होना** – आयोग, राज्य आयोग का प्रत्येक सदस्य और इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का निर्वहन करने के लिए आयोग या राज्य आयोग में नियुक्त प्रत्येक अधिकारी, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थान्तर्गत लोक सेवक समझा जाएगा ।

33. **केन्द्रीय सरकार द्वारा निदेश** – (1) आयोग, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने में राष्ट्रीय प्रयोजनों से संबंधित नीति विषयक प्रश्नों पर ऐसे निदेशों द्वारा मार्गदर्शित होगा, जो उसे केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए जाएं ।

(2) यदि केन्द्रीय सरकार और आयोग के बीच इस बारे में कोई विवाद उत्पन्न होता है कि कोई प्रश्न राष्ट्रीय प्रयोजन से संबंधित नीति विषयक प्रश्न है या नहीं, तो उस पर केन्द्रीय सरकार का विनिश्चय अंतिम होगा ।

34. **विवरणियां या जानकारी** – आयोग, केन्द्रीय सरकार को अपने उन क्रियाकलापों के संबंध में ऐसी विवरणियां या अन्य जानकारी प्रस्तुत करेगा जिनकी केन्द्रीय सरकार समय-समय पर अपेक्षा करे ।

35. **केन्द्रीय सरकार की नियम बनाने की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में, निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबन्ध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा के निबंधन और शर्तें तथा धारा 6 के अधीन उनके वेतन और भत्ते ;

(ख) आयोग द्वारा धारा 10 की उपधारा (4) के अधीन अधिवेशन में उसके कारबार के संव्यवहार के संबंध में उसके द्वारा अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया ;

(ग) वे शक्तियां और कर्तव्य जिनका प्रयोग और पालन धारा 11 की उपधारा (2) के अधीन आयोग के सदस्य-सचिव द्वारा किया जाएगा ;

(घ) धारा 11 की उपधारा (3) के अधीन आयोग के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा अन्य निबंधन और शर्तें ; और

(ङ) धारा 29 की उपधारा (1) के अधीन आयोग द्वारा तैयार किए जाने वाले लेखा विवरण और अन्य अभिलेख का प्ररूप ।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्र के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव भाव होने से पहले उसके अधीन की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

36. **राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति** – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में, निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए, उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) राज्य आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा के निबंधन और शर्तें, तथा धारा 20 के अधीन उनके वेतन और भत्ते ;

(ख) राज्य आयोग द्वारा धारा 24 के साथ पठित धारा 10 की उपधारा (4) के अधीन बैठक में उसके कारबार के संव्यवहार के संबंध में अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया ;

(ग) वे शक्तियां और कर्तव्य जिनका प्रयोग और पालन धारा 21 की उपधारा (2) के अधीन राज्य आयोग के सचिव द्वारा किया जाएगा ;

(घ) धारा 21 की उपधारा (3) के अधीन राज्य आयोग के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ; और

(ङ) धारा 30 की उपधारा (1) के अधीन राज्य आयोग द्वारा तैयार की जाने वाली लेखा विवरणी और अन्य अभिलेख का प्ररूप ।

(3) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के जहां उसके दो सदन हैं, प्रत्येक सदन के समक्ष, या जहां, ऐसे राज्य विधान-मंडल में एक सदन है तो उस सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

37. **कठिनाइयां दूर करने की शक्ति** – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा ऐसे उपबंध कर सकेगी, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक प्रतीत होते हों :

परन्तु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145
2.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
3.	भारत का सांविधानिक इतिहास – (103वां संविधान संशोधन तक) – श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
4.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व – डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2024	कीमत रु. 2,500
2. भारत का संविधान (पाकेट एडीशन)	2024	कीमत रु. 325

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in

Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ` 2,100/-, ` 1,300/- और ` 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को ऑन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in